“MAA” OMWATI COLLEGE OF EDUCATION HASSANPUR (PALWAL)

AFFILIATED CRS UNIVERSITY, JIND

B.ED – 1ST YEAR (2021-22)

NOTES PAPER- IV/V

PEDAGOGY OF HINDI

MAA OMWATI EDUCATION TRUST

DELHI

E-mail: moce.principal@maaomwati.com

मातृ भाषा का अर्थ

कुछ विद्वानों के अनुसार मातृ भाषा का शाब्दिक अर्थ – मातृ + भाषा = माता से सीखी हुई भाषा है। लेकिन यह बहुत संकुचित अर्थ है। आंग्ल भाषा के विद्वान लेखक श्री बेलार्ड के अनुसार माता से सीखी हुई भाषा तथा समाज से सीखी हुई भाषा मातृ–भाषा कहलाती है। मातृ–भाषा से हमारा तात्पर्य भाषा के उस व्यापक रूप से है जो एक संकुचित सीमा में न होकर उस क्षेत्र या समाज में व्यापक रूप से बोली जाती है। अत: मातृ भाषा का अर्थ केवल माता से सीखी जाने वाली भाषा न होकर क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली भाषा है। विस्तृत अर्थ में यह कहना उचित होगा कि मातृ भाषा किसी क्षेत्र विशेष की उस भाषा को कहा जाता है जिसमें उस क्षेत्र के रहने वाले सभी व्यक्ति मौखिक या लिखित रूप से विचारों का आदान प्रदान करते हैं।

स्वाभाविक अभिव्यक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालक को 105 या 106 डिग्री बुखार हो और उस समय बेसुध हालत में जिस भाषा में वह बुदबदाये वो भाषा उस बालक की मातृ भाषा होगी।

Scanned by CamScanner

मातृ भाषा शिक्षण का महत्त्व

हम इस बात पर पहले ही विचार कर चुके हैं कि भाषा शिक्षा का माध्यम है। वैसे तो शिक्षा का माध्यम कोई भी भाषा हो सकती है लेकिन बालक नई बातों को अपनी मातृ भाषा के माध्यम से जितनी जल्दी स्वाभाविक ढंग और सहजता से समझ सकते हैं उतनी जल्दी अन्य भाषाओं के माध्यम से नहीं समझ सकते। वास्तव में सभी देशों में अन्य भाषाओं की अपेक्षा मातृ भाषा का स्थान सर्वोपरि होता है। मातृ भाषा ही वह भाषा है जिसके द्वारा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव होता है। इस लिये विद्यालयों में मातृ भाषा की शिक्षा देना परमावश्यक है। पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और दिल्ली में हिन्दी मातृ-भाषा है और साथ ही साथ भारत की राष्ट्र भाषा एवं सम्पर्क भाषा भी है। विदेशों में हिन्दी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है। समस्त भारत में हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में पढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है परन्तु हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में (प्रदेशों में) हिन्दी मातृ भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। मातृ भाषा समस्त भाषाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि यह बालक की प्रथम और पालने (Cradle) की भाषा होती है। हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में हिन्दी का महत्त्व बहुत अधिक है। मातृ भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण का महत्त्व निम्नलिखित गुणों के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है।

1. ज्ञानोपार्जन का सरलतम माध्यम : बालक अपने आस-पास के निकटतम वातावरण में रहते हुए बहुत कुछ सीखता है। विद्यालय में जाने से पहले ही मातृ भाषा से सम्बन्धित बहुत से शब्दों का ज्ञान हो जाता है। इन शब्दों को वह भली-भांति ग्रहण एवं अभिव्यक्त कर सकता है। छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा अपने भावों, विचारों और आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति करना भी सीख जाता है। उसे किसी बात का समझना और बोलना आ जाता है लेकिन पढ़ना और लिखना नहीं। बालक को लिखना और पढ़ना सिखाने के लिये हमें मातृ भाषा शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि बालक को किस भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाये कि वह नई बातों को सरलता से समझ ले ? इस प्रश्न का उत्तर सभी से यही मिलेगा कि मातृ भाषा सरलतम है जिसके बारे में वह मौखिक रूप से जाने-अनजाने में अपने निकटतम वातावरण में थोड़ा बहुत सीख चुका है। इस लिये मातृ भाषा के माध्यम से शिक्षा देना सरलतम है। इसके मुख्य रूप से दो कारण हैं। जो निम्नलिखित हैं :-

(1) एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि किसी बात को भुलाकर कोई अन्य बात सीखना इतना सरल नहीं होता जितना कि एक नई बात को सीखना या सिखाना। क्योंकि जिस भाषा को बालक बचपन से ही सीखता चला आया है उसी के माध्यम से किसी बात का सीखना और समझना जितना सरल है उसी बात को दूसरी भाषा के माध्यम से समझना उतना कठिन है।

Scanned by CamScanner

(2) अर्थ ग्रहण और अभिव्यक्ति के मौखिक रूप की शिक्षा बालकों को मातृ भाषा के माध्यम से बचपन से मिलती रहती है। अध्यापक को केवल लिखने और पढ़ने पर विशेष ध्यान देना होता है।

2. बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास : मातृ भाषा को शिक्षा के माध्यम का आधार बना कर चलना चाहिये। इससे बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा। बालकों के सर्वांगीण विकास के अन्तर्गत उनका (1) शारीरिक विकास (2) मानसिक (3) सामाजिक (4) भावात्मक (5) नैतिक और (6) सांस्कृतिक विकास होने लगता है। इन सभी उपशीर्षकों की व्याख्या निम्न है।

(1) शारीरिक विकास :– शरीर के स्वस्थ रखने के लिये पौष्टिक भोजन, गहरी नींद और चित्त की प्रसन्नता बहुत आवश्यक है। बालक रात को सोने से पहले अपनी मां को कहानी सुनाने के लिये कहते हैं। यह आवश्यक या सम्भव नहीं हर मां जो कहानी सुनाती है वह शिक्षित ही हो, किन्तु मातृ भाषा के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकती है। बालक इन कहानियों को सुन कर बहुत प्रसन्न होते हैं। बड़े होने पर उस भाषा के साहित्य को पढ़ते हैं जिसमें वे बचपन में कहानी सुनते थे और मातृ भाषा में रचित साहित्य उनके जीवन की समस्याओं को सुलझाने में सहायक सिद्ध होता है।

(2) मानसिक विकास :– मानसिक व बुद्धि से सम्बन्धित विचारों से सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। कुछ के विचार में बुद्धि वशंगत होती है अर्थात् बुद्धिमान माता पिता का बालक भी बुद्धिमान ही होगा। परन्तु हमेशा ऐसा देखने में नहीं आता। दूसरे विद्वानों का यह कहना है कि बुद्धि को प्रभावित करने में वातावरण की भूमिका अधिक होती है। अच्छे वातावरण में रहकर बालक का मानसिक विकास होता है और प्रतिकूल वातावरण में मानसिक विकास में बाधा आती है। भाषा विचारों के विकास में सहायक होती है क्योंकि बालक भाषा में ही सोच विचार करता है और बातों को समझने का प्रयास करता है। परन्तु सभी भाषाओं में कही हुई बातों को सरलता से समझ लेता है जो उसे अपनी मातृ भाषा में सुनने को मिलती हैं। इस लिये यह कहा जा सकता है कि मातृ भाषा बालकों के मानसिक विकास में सहायक है।

(3) सामाजिक विकास :– मनुष्य इस धरा पर सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। क्योंकि उसके पास सोचने समझने की शक्ति है। इसी लिये उसे सामाजिक प्राणी कहा जाता है। उसका अस्तित्व समाज में ही सम्भव है। वह समाज का अंग है। वह समाज के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं का समाधान करता है। अपनी समस्याओं के समाधान हेतु वह दूसरों से विचारों का आदान प्रदान करता है। विचारों का आदान प्रदान किसी भाषा के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। परन्तु अनजान भाषा के माध्यम से ऐसा नहीं हो सकता। विचारों के आदान–प्रदान के लिये तो वही भाषा उचित होगी जिसे विचार विनिमय करने वाले सरलता से समझ सकते हों। मातृभाषा ही

Scanned by CamScanner

एक ऐसी भाषा है जिसे किसी भी समाज के सभी व्यक्ति बोल सकते हैं और दूसरों को सुनकर समझ सकते हैं। इस प्रकार दूसरों से सहायता लेने, उनको सहयोग देने में सामाजिकता की भावना का निरन्तर विकास होता रहता है। इस विकास में मातृ भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। मातृ भाषा के प्रति बालक का प्रेम स्वाभाविक होता है। क्योंकि यह भाषा पालने की (Language of Cradle) होती है। उसका यह प्रेम किसी भी लिखित विषय को पढ़ने और समझने में अधिक से अधिक रूचि पैदा करता है। इससे उसके मानसिक विकास के साथ-साथ सामाजिक कुशलता का भी विकास होता है।

(4) भावात्मक विकास :– यह बात अनुभव के आधार पर सर्वविदित है कि एक ही भाषा के बोलने वालों में जितना पारस्परिक प्रेम की भावना का विकास होता है उतना भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वालों में नहीं होता। ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि बालक को जितना प्यार अपने भाई बहनों से होता है उतना आस पड़ोस के बालकों से नहीं होता। जितना आस पड़ोस के बालकों से होता है इतना मोहल्ले के सभी बालकों से नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्बन्धों में जितनी दूरी बढ़ती चली जायेगी उतनी ही स्वाभाविक प्रेम में कमी होती चली जायेगी। ठीक इसी प्रकार बालकों या व्यक्तियों का मातृभाषा के प्रति जितना प्रगाढ़ प्रेम होता है उतना अन्य भाषाओं के प्रति नहीं होता। यही कारण है कि यदि हम एक ऐसे स्थान पर पहुंच जाएं जहां के व्यक्ति हमेशा भिन्न भाषा बोलने वाले हों, वहां पर सौभाग्य से यदि एक भी ऐसा व्यक्ति मिल जाये जो हमारी भाषा में बोल सकता हो तो हम उसके साथ ऐसे प्रेम से बातें करते हैं जैसे कि वह हमारा अभिन्न अंग हो। एक भाषा-भाषी व्यक्तियों के बीच उनकी मातृभाषा सहानुभूति, सद्भावना और भावात्मक एकता का प्रतीक है। मातृ भाषा भावात्मक एकता का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

(5) नैतिक विकास :– आज सबसे बड़ी आवश्यकता बालकों में चारित्रिक और नैतिक विकास करने की है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब शिक्षक या समाज उन बातों में करना चाहते हैं। शिक्षक और समाज के बड़े सदस्यों को बालकों के समक्ष अपना आदर्श रूप कथनी और करनी में प्रस्तुत करना होगा। दूसरी बात यह है कि शिक्षक बालकों को ऐसा साहित्य पढ़ने की प्रेरणा दे जिसके पढ़ने से बालकों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़े और उन्हें चरित्र निर्माण की शिक्षा मिले उनमें नैतिकता पूर्ण सद्गुणों का विकास हो। बालक अपने आस-पास के वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों से जो बातें सुनता है, उनका भी बालक के चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। दूसरे व्यक्तियों की अच्छी बातें सुनकर ग्रहण करने के लिये मातृभाषा बालक के नैतिक विकास में सशक्त साधन का कार्य करती है।

(6) सांस्कृतिक विकास :– साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसी लिये साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्य में समाज के रीति रिवाज़ परम्पराएं, और आचार विचार निहित होते हैं। भली-

Scanned by CamScanner

मातृ-भाषा शिक्षण के उद्देश्य

मातृ-भाषा का एक विषय के रूप में भी अध्ययन किया जाता है और साथ ही साथ यह अन्य विषयों के अध्ययन के लिये माध्यम के रूप में आधार शिला भी है। इस लिये मातृ भाषा हिन्दी शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित करने से पहले शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करना आवश्यक है। फिर इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि जिस विषय को पढ़ाया जायेगा उस विषय की क्या प्रकृति है और उससे किन-किन शैक्षिक उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति सम्भव है। इसके बाद यह देखना भी आवश्यक हो जाता है कि सीखने वालों की रूचि, क्षमता और आवश्यकता किस प्रकार की है ? अन्त में इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु हमारे पास

Scanned by CamScanner

कितना समय है और इस उपलब्ध समय में हम उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति करने में सफल हो सकते हैं। मातृ भाषा शिक्षण के लिये हमें निम्नलिखित तथ्यों का स्वीकारना अत्यन्त आवश्यक है –

1. शिक्षा के उद्देश्य
2. मातृ भाषा की प्रकृति
3. मातृ भाषा की साहित्यिक विधाएं
4. सीखने वालों की प्रकृति
5. समय की उपलब्धता

ऊपरलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मातृ भाषा के उद्देश्यों को निश्चित करना सरल हो जाता है। इन उद्देश्यों को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

I. छात्रों में दूसरों की मौखिक भाषा को पूर्ण रूप से समझने की योग्यता का विकास करना।

II. उनमें अपने भाव एवं विचारों को मौखिक रूप से प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने की योग्यता का विकास करना।

III. उनमें दूसरों की लिखित भाषा को पूर्ण रूप से समझने की योग्यता का विकास करना।

IV. उनमें अपने भाव एवं विचारों को लिखित रूप में प्रभावशाली ढंग अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।

V. छात्र–छात्राओं में मातृ भाषा के साहित्य के प्रति रूचि पैदा करना।

VI. छात्र–छात्राओं के मातृ भाषा साहित्य के काव्य रूप का रसास्वादन करने योग्य बनाना अर्थात् सौन्दर्यानुभूति का विकास करना।

VII. उनको साहित्य कोष में निहित विविध प्रकार के ज्ञान–विज्ञान से परिचित कराना।

VIII. छात्रों को अपनी सभ्यता और संस्कृति से परिचित कराना।

IX. छात्रों को मानव जीवन और उसकी विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान कराना और उनकी रूचियों का विकास करना।

X. छात्रों की सृजनात्मक शक्तियों का विकास करना।

XI. छात्रों को साहित्य के सृजन की ओर उन्मुख करना।

XII. छात्रों की सद्वृत्तियों का विकास करते हुए उनको चरित्र निर्माण की शिक्षा देना।

Scanned by CamScanner

देवनागरी लिपि

व्यवहारगत उद्देश्य

इस कैप्सूल के अध्ययन के पश्चात् आप—

1. देवनागरी लिपि की प्रकृति तथा स्वरूप को बता सकेंगे।
2. देवनागरी लिपि की विशेषताएँ और नियम बता सकेंगे।

3.1.0 भाषा में लिपि का स्थान

भाषा को दृश्य रूप में स्थायित्व प्रदान करने वाले वर्ण-प्रतीकों की परंपरागत व्यवस्था को 'लिपि' कहते हैं। जिस प्रकार मौखिक भाषा, ध्वनि-व्यवस्था का व्यावहारिक रूप है, उसी प्रकार लिखित भाषा लिपि संकेतों की व्यवस्था का व्यावहारिक रूप है। इससे स्पष्ट है कि भाषा का समुचित विकास तभी संभव है, जब उसे ध्वन्यात्मकता के साथ दृश्य रूप भी प्राप्त हो। तभी वह विकास क्रम में इतनी व्यापक हो सकती है कि देशकाल की सीमाएँ भी उसे बांध नहीं सकतीं। यद्यपि भाषा का प्रमुख और आरंभिक रूप मौखिक है, तथापि सभ्यता के विकास क्रम में उसके लिखित रूप का भी विकास हुआ। लिपि के आविष्कार ने मानव सभ्यता के विकास की असीम संभावनाओं के अनेक द्वार खोल दिए।

3.1.1 देवनागरी लिपि की प्रकृति और स्वरूप

लेखन में ध्वनि संकेतों का प्रतिनिधित्व करने वाले रेखा परक संकेतों को लिपि कहते हैं। इन्हें वर्ण भी कहा जाता है। किसी भाषा के वर्णों की सूची को *वर्णमाला* कहते हैं। हिंदी ध्वनियों को लिखकर व्यक्त करने के लिए जिस लिपि का प्रयोग होता है वह देवनागरी लिपि के नाम से जानी जाती है।

देवनागरी लिपि का विकास भारतीय भाषाओं की अन्य सभी लिपियों के समान, ब्राह्मी लिपि से हुआ है। ब्राह्मी देवनागरी लिपि आक्षरिक लिपि है। उसका प्रत्येक वर्ण एक अक्षर अर्थात् स्वर या व्यंजन + स्वर रूप होता है जैसे क = क् + अ, जबकि रोमन और उर्दू लिपियाँ शुद्ध अल्फाबेटिक लिपियाँ हैं, क्योंकि उनके वर्ण अक्षर न होकर या तो शुद्ध व्यंजनात्मक होते हैं, (के.पी. एल. आदि) या स्वरात्मक (ए,इ, ओ आदि)।

भारत में प्रेस के आने से पहले, भारत के विभिन्न प्रदेशों में ब्राह्मी से उद्भूत विभिन्न लिपियाँ प्रचलित थीं, परंतु प्रेस के आने के बाद लिपियों का मानकीकरण हुआ और अब देवनागरी लिपि संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी प्राचीन भाषाओं के साथ हिंदी, मराठी, नेपाली तथा कुछ आदिवासी भाषाओं के लिए प्रयुक्त हो रही है।

अभ्यास कार्य	निर्देश
❑ देवनागरी में कौन-सी भाषाएँ लिखी जाती हैं ?	चर्चा कीजिए

3.1.2 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

1. **क्रमबद्धता :** देवनागरी वर्णमाला में लिपि-संकेतों को निश्चित क्रम एवं व्यवस्था में संयोजित किया गया है। इसमें स्वर, संयुक्त स्वर, व्यंजन और संयुक्त व्यंजनों की वैज्ञानिक व्यवस्था है। लिपि के प्रत्येक चिह्न का सुनिश्चित ध्वनि-मूल्य है। इसलिए देवनागरी लिपि में भ्रम की कोई संभावना नहीं है। इसकी वर्णमाला में स्वर और व्यंजनों का वर्गीकरण ध्वनि विज्ञान की पद्धति

Scanned by CamScanner

के अनुसार उच्चारण स्थान और प्रयत्नों के आधार पर किया गया है। इस वर्णमाला के वर्णों और उनके शुद्ध उच्चारण सीख लेने पर शब्दों की वर्तनी रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल शब्दों का शुद्ध उच्चारण जानने से ही उनको शुद्ध लिखा जा सकता है। ध्वनि-लिपि का परस्पर सह संबंध हिंदी देवनागरी लिपि की अपनी विशेषता है।

2. **लिपि संकेतों की पूर्णता :** देवनागरी में हिंदी की सभी ध्वनियों के लिए स्वतंत्र लिपि चिह्न एवं वर्ण हैं। अरबी, फ़ारसी तथा अंग्रेजी के प्रभाव से जो नई ध्वनियाँ हिंदी में आई हैं, उन्हें व्यक्त करने के लिए कुछ वर्णों में विशेष चिह्न लगाए गए हैं। अनुनासिक (ँ) और अनुस्वार (ं) जैसे लिपि-चिह्न इसकी ध्वन्यात्मके विशेषता को और भी सिद्ध कर देते हैं।

3. **वर्ण विभाजन की वैज्ञानिकता :** देवनागरी लिपि की वर्णमाला के वर्णों को कुछ वर्गों में विभक्त किया गया है। पहले सभी वर्णों को स्वर और व्यंजन के रूप में बाँटा गया है। फिर स्पर्श व्यंजनों को पाँच वर्गों—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग में वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकृत किया गया है जो उनके उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर है। इन वर्गों में पहले-तीसरे और दूसरे-चौथे क्रम पर भी समान वर्णों का स्थान निर्धारित है। घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण और नासिक्य विशेषताओं के कारण भी इन वर्णों को एक निश्चित क्रम में रखा गया है।

भारत सरकार ने हिंदी के लिए देवनागरी लिपि का मानकीकरण किया है। इस लिपि की मानक वर्णमाला यहाँ दी जा रही है :

मानक देवनागरी वर्णमाला

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ (ऋ) ए ऐ ओ औ

मात्राएँ

ा (का) ि (कि) ी (की) ु (कु) ू (कू) ृ (कृ)
े (के) ै (कै) ो (को) ौ (कौ)

अनुस्वार ं (अं)

अनुनासिक ँ (आँ) (ं)

विसर्ग : (तः)

व्यंजन

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व
श ष स ह

संयुक्त व्यंजन

क्ष त्र ज्ञ श्र

हल चिह्न ् (क्)

परिवर्द्धित लिपि संकेत

ऑ (ॉ) - (कॉलिज), क़ (क़लम), ख़ (ख़बर), ज़ (ज़नून), फ़ (फ़ायदा), ग़ (ग़जल)

देवनागरी अंक

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

अन्तर्राष्ट्रीय रूप

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

Scanned by CamScanner

"ध्यानपूर्वक बनाई पाठ योजना सफल शिक्षण का मूलमन्त्र है ।"

5

पाठ-योजना का अर्थ, महत्त्व एवं रुप रेखा (Lesson-Planning- Meaning, Importance and Out-Line)

प्रभावशाली एवं निपुण शिक्षकों के निर्माण के लिये शिक्षण के क्षेत्र में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया जाता है। इस लिये अध्यापक-शिक्षा के अन्तर्गत इस प्रकार की व्यवस्था का करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है जिससे भावी शिक्षकों में शिक्षण के लिये आत्म विश्वास की भावना जागृत हो और शिक्षण के कौशलों को समुचित ढंग से विकास हो।

पाठ योजना का अर्थ

जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये योजना की आवश्यकता पड़ती है। बिना योजना के हम वांछनीय उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकते। इसी प्रकार शिक्षक भी बिना पाठ योजना बनाये अगर कक्षा में प्रवेश करता है तो वह छात्र-छात्राओं को पढ़ाने में सफल नहीं हो सकता। इस लिये प्रत्येक शिक्षक के लिये यह आवश्यक है कि वह कक्षा में पढ़ाने से पहले भली भांति पाठ योजना तैयार करे। बौसिंग महोदय के अनुसार - पाठ योजना उस विवरण का नाम है जिसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि किसी पाठ से किन-किन लक्ष्यों की प्राप्ति होगी और किन साधनों के माध्यम से शिक्षण प्रक्रियाओं को सम्पन्न करना है। नियोजित ढंग से शिक्षा देने से तात्पर्य है निश्चित उद्देश्य, निश्चित पाठ्यक्रम और नियोजित शिक्षण प्रक्रियाओं का होना। नियोजित एवं सुचारू रूप से शिक्षण के लिये पाठ योजना का तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है।

आई. के. डेवीज ने अपने प्रथम सोपान में पाठ-योजना की रचना को विशेष महत्त्व दिया है। शिक्षण व्यवस्था के सभी पक्षों के व्यावहारिक रूप का आलेख ही पाठ-योजना है। कक्षा-शिक्षण की पूर्व अवस्था में पाठ-योजना तैयार की जाती है।

पाठ-योजना के सम्बन्ध में डेविस महोदय का विचार है कि कक्षा में जाने से पूर्व शिक्षक को पूरी तैयार कर लेनी चाहिये क्योंकि शिक्षक की प्रगति के लिये कोई बात इतनी बाधक नहीं है जितनी कि शिक्षण की तैयारी।

विनिंग और विनिंग के अनुसार- "दैनिक पाठ-योजना के निर्माण में उद्देश्यों को परिभाषित करना, पाठ्य वस्तु का चयन करना तथा उसे क्रम बद्ध रूप में व्यवस्थित करना और प्रस्तुतीकरण की विधियों यथा प्रक्रिया का निर्धारण करना है।"

शिक्षण की सुविधा के लिये शिक्षक जिस पाठ्य वस्तु को पढ़ाना चाहता है उसे छोटी इकाईयों में बांट लेता है। एक इकाई की विषय वस्तु को वह एक कालांश (अवधि) में पढ़ाता है। पढ़ाने के लिये उस विषय वस्तु की एक रूपरेखा तैयार करता है जिसे पाठ-योजना कहते हैं। भावी शिक्षकों को शिक्षण अभ्यास के समय पाठ-योजनाओं को लिखित रूप में तैयार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। भावी शिक्षक के लिये कक्षा शिक्षण से पूर्व पाठ-योजना की तैयारी अत्यन्त आवश्यक है।

पाठ-योजना का सबसे पहला पद शिक्षण लक्ष्यों का निर्धारण है। दूसरे पद पर इन शिक्षण लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले कार्यों का निर्धारण होता है। तीसरे और अन्तिम पद पर यह निश्चित किया जाता है कि पाठ शिक्षण के प्रभाव का मापन और मूल्यांकन किस प्रकार किया जाना है। भावी शिक्षक कक्षा में पढ़ाने से पूर्व यह सब निश्चित कर उसे लेखनी बद्ध कर लेता है और इससे उसमें स्वाभाविक रूप से आत्म विश्वास आ जाता है। इस प्रकार पाठ योजना की सहायता से समय और शक्ति का सदुपयोग होता है और कक्षा में सफल शिक्षण सम्भव होता है। इसके लिये पाठ योजना का निर्माण सूझ-बूझ के साथ उचित ढंग से किया जाना चाहिये।

पाठ-योजना की आवश्यकता और महत्त्व

पाठ-योजना शिक्षण-प्रक्रिया का मुख्य आधार है। पाठ-योजना शिक्षकों और भावी शिक्षकों का पग पग पर मार्ग दर्शन करती है। पाठ योजना के अभाव में शिक्षक अपने लक्ष्य से भटक सकता है। डेविस महोदय ने पाठ-योजना की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है- "शिक्षक के लिये कोई वस्तु इतनी घातक नहीं है, जितनी की पाठ की तैयारी का कम होना।" पाठ-योजना के बनाने से शिक्षक में आत्मविश्वास आ जाता है और वह सफल ढंग से पढ़ाने के लिये अपने को समर्थ समझने लगता है। पाठ-योजना की आवश्यकता और उसके महत्त्व को निम्न ढंग से स्पष्ट किया गया है -

1. कक्षा में शिक्षण प्रक्रियाओं एवं सहायक सामग्री की पूर्ण रूप से जानकारी हो जाती है।
2. पाठ के प्रस्तुतीकरण की क्रमबद्धता और विषय वस्तु को निश्चित कर लिया जाता है।
3. विषय-वस्तु के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के क्रम, चिन्तन एवं विकास में क्रमबद्धता स्थापित कर ली जाती है।

Scanned by CamScanner

पाठ-योजना का महत्त्व

पाठ-योजना की आवश्यकता को समझते हुए इसके महत्त्व को जानना हमारे लिये बहुत सरल हो जाता है। हरबार्ट, मॉरिसन, जॉन डीवी, किलपैट्रिक और व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक ने पाठ योजना के महत्त्व को स्वीकार किया है और पाठ-योजना के विभिन्न सोपानों का उल्लेख किया है। इन सोपानों के अन्तर्गत पाठ-योजना का महत्त्व निम्न है –

(I) शिक्षण-प्रक्रिया की व्यवस्था के नियोजन, आयोजन, अग्रसरण और नियन्त्रण सम्बन्धी निर्णयों को उपयोगी एवं प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से पाठ-योजना बहुत महत्त्वपूर्ण है। पाठ-योजना के निर्माण से शिक्षण के सभी पहलुओं के बारे में समुचित निर्णय लेने की क्षमता का विकास किया जा सकता है।

(II) पाठ-योजना बनाने हेतु शिक्षक को पाठ के लक्ष्यों तथा उन्हें प्राप्त करने के लिये आवश्यक सामग्री के प्रयोग के बारे में स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

(III) शिक्षण एवं शिक्षण-कार्य की संगतता (सार्थकता), तर्कबद्धता और क्रमबद्धता का पूर्वाभास पाठ-योजना के अवलोकन से संम्भव हो जाता है। इस लिये शिक्षण में विसंगतियों, क्रमहीनता एवं तर्कहीनता को आसानी से त्याग दिया जाता है।

(IV) पाठ योजना शिक्षक के लिये एक ऐसे आधार को तैयार करती है जिससे शिक्षक में आत्मविश्वास, धैर्य, परिश्रमी स्वभाव और संयम जैसे गुणों का विकास होता है।

(V) सीखने सिखाने की प्रक्रिया का सही ढंग से मूल्यांकन करने में पाठ-योजना का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

(VI) पाठ योजना का सीधा सम्बन्ध कक्षा में सीखने सिखाने की प्रक्रिया से होता है। इसके द्वारा शिक्षक को बालकों को समझने में सहायता मिलती है और शिक्षक अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करने में समर्थ होता है।

(VII) पाठ-योजना का निर्माण शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों के लिये ही हितकर होता है। शिक्षक प्रत्यक्ष रूप से और विद्यार्थी अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होता है। जहां पाठ-योजना के माध्यम से शिक्षक को पढ़ाने में सहायता मिलती है वहां विद्यार्थी के लिये सीखना एवं समझना सरल और सार्थक हो जाता है।

Scanned by CamScanner

पाठ योजना की रूप रेखा

इस पाठ योजना में हरबर्ट की पचं पदी प्रणाली का अनुसरण किया जाता है। वे इस प्रकार हैं – (1) योजना (2) प्रस्तुतीकरण (3) तुलना एवं समरूपता (4) सामान्यीकरण (5) प्रयोग। इन पांच पदों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

(1) योजना – इस सोपान (पद) के अन्तर्गत शिक्षक विषय वस्तु के सभी तत्त्वों को अपने चेतन मस्तिष्क में ग्रहण कर लेता है।

(2) प्रस्तुतीकरण – शिक्षक नवीन तथ्यों को छात्रों के पूर्वज्ञान से सम्बन्ध जोड़कर प्रस्तुत करता है। प्रस्तुतीकरण बोध प्रश्नों एवं विकासात्मक प्रश्नों के द्वास किया जाता है।

(3) तुलना एवं समरूपता – इसमें शिक्षक नवीन तथ्यों का पूर्व तथ्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है।

(4) सामान्यीकरण – इस पद में छात्र दो या दो से अधिक तथ्यों में समानता ढूंढने का प्रयास करता है ताकि वो नियम निकालने में सफल हो सके।

(5) प्रयोग – शिक्षक द्वारा इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न की जाती हैं जिससे छात्र सीखे हुए ज्ञान का प्रयोग कर सकें।

इन उपरोक्त पांच सोपानों के आधार पर पाठ योजना की रूप रेखा तैयार की जा सकती है जिसके प्रमुख पहलु निम्नलिखित हैं –

I. विषय, प्रकरण, कक्षा, विभाग, अवधि तथा दिनांक।

II. सामान्य उद्देश्य।

III. विशेष उद्देश्य।

IV. प्रस्तावना।

V. उद्देश्य कथन।

VI. प्रस्तुतीकरण बोध प्रश्नों के द्वारा।

VII. विकासात्मक प्रश्न।

VIII. स्पष्टीकरण।

IX. चाकबोर्ड सार।

X. पुनरावृति प्रश्न।

XI. गृहकार्य।

Scanned by CamScanner

इस पाठ योजना में उपरोक्त बिन्दुओं का अनुसरण करते हैं। इन बिन्दुओं का संक्षिप्त विवरण निम्न है।

(I) विषय, कक्षा तथा प्रकरण :– यह बिन्दु पाठ-योजना का सीमाकरण करता है। क्योंकि सबसे पहले प्रकरण (उपविषय) का चयन किया जाता है और उसका शिक्षण किस स्तर पर किया जाये, शिक्षण की तिथि, कक्षा और शिक्षण की अवधि को पहले से निर्धारित कर लिया जाता है। भावी शिक्षक किस विद्यालय में शिक्षण करेगा इसका निर्णय भी पहले से ही कर लिया जाता है।

(II) सामान्य उद्देश्य :– सामान्य उद्देश्यों का आधार प्रथम विन्दु होता है। भाषा शिक्षण में अनेक विधाएं होने के कारण उनके सामान्य उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे कविता, गद्य, कहानी, नाटक, निबन्ध और व्याकरण शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों में कुछ सीमा तक समानता होने पर भी भिन्नता पाई जाती है। कक्षा के स्तर के अनुसार भी सामान्य उद्देश्यों में भिन्नता होती हैं। सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पाठ योजना सक्षम साधन है। परन्तु चालीस मिनट की अवधि में विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति ही सम्भव हो सकती है।

(III) विशेष उद्देश्य :– विशेष उद्देश्यों का सम्बन्ध उद्देश्यों से होता है लेकिन विशेष उद्देश्य यथा पाठ-वस्तु के अनुसार होते हैं। भाषा शिक्षण में अधिकतर विशेष उद्देश्यों का सम्बन्ध भाषा के कौशलों के विकास से होता है। इस प्रकार पाठ्य सामग्री के आधार पर ही विशेष उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं।

(IV) प्रस्तावना :– प्रस्तावना का सम्बन्ध पाठ के प्रारम्भ करने से होता है। शिक्षक पहले से ही छात्रों से जो प्रश्न पूछने होते हैं उनका निर्णय कर लेता है। प्रस्तावना के प्रश्न छात्रों के पूर्वज्ञान से सम्बन्धित होते हैं। इन प्रश्नों के द्वारा ही शिक्षक छात्रों को नवीन पाठय-वस्तु (प्रकरण) से परिचित कराता है। इन प्रश्नों का प्रयोग बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया जाता है क्योंकि इनका सम्बन्ध प्रकरण की भूमिका से होता है।

(V) उद्देश्य कथन :– प्रस्तावना के प्रश्न पूछने के बाद जब छात्र प्रकरण से सम्बन्धित उत्तर देने में समर्थ होते हैं तो शिक्षक शिक्षण हेतु कक्षा में प्रकरण की घोषणा कर देता है।

(VI) विकासात्मक प्रश्न :– उद्देश्य कथन के बाद शिक्षक पढ़ाना प्रारम्भ कर देता है और छात्रों से प्रश्न पूछते हुए पाठ का विकास करता है। इन प्रश्नों को विकासात्मक प्रश्न कहते हैं। ये प्रश्न छात्रों की तर्क-वितर्क शक्ति का विकास करने के लिये भी सहायक होते हैं।

(VII) स्पष्टीकरण :– शिक्षण करते समय जब छात्रों को समझने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई आती है तो शिक्षक उन तथ्यों का स्पष्टीकरण कर देता है।

Scanned by CamScanner

(VIII) चाकबोर्ड कार्य :– शिक्षक जब यह समझता है कि केवल सुनने मात्र से स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है तो वह पाठ्य-वस्तु के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को समझने के लिये चाकबोर्ड का प्रयोग करता है।

(IX) पुनरावृत्ति प्रश्न :– पढ़ाये गये प्रकरण से सम्बन्धित जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनको पुनरावृत्ति के प्रश्न कहते हैं। शिक्षक इन प्रश्नों के पूछने से पहले चाकबोर्ड कार्य को मिटा देता है और छात्रों को उत्तर पुस्तिकाओं को बन्द करने के निर्देश देता हैं। इन प्रश्नों के द्वारा पाठ को दोहराने एवं अभ्यास करने का अवसर मिलता है। इन प्रश्नों के माध्यम से यह भी पता चलता है कि छात्रों ने कितना कुछ सीख लिया है।

(X) गृहकार्य :– पुनरावृत्ति के बाद शिक्षक विद्यार्थियों को प्रकरण से सम्बन्धित गृहकार्य देता है। गृहकार्य का उद्देश्य भी पाठ को दोहराना और उसका अभ्यास करना होता है।

Scanned by CamScanner

6

हिन्दी-शिक्षण में अनुदेशनात्मक सामग्री का अर्थ, महत्त्व एवं उचित प्रयोग

(Meaning, Importance and proper use of Instructional Material in Hindi Teaching)

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ वह मनोशारीरिक प्राणी भी है । वह अपने शरीर सम्बन्धित कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मन मस्तिष्क के माध्यम से संसार की वस्तुओं, क्रियाओं और घटनाओं का अनुभव करता है और वह बुद्धि का प्रयोग करके उनमें कांट छांट करके अपनी स्मृति में संचय करता है । मनुष्य में किसी भी नई वस्तु, क्रिया और घटना को देखकर जिज्ञासा पैदा होती है और वह उसके बारे में जानने के लिये उत्सुक हो जाता है । उसके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठने लगते हैं, जैसे कब, कहां, कैसे और क्यों । वह इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये प्रयास करता है । इन प्रश्नों का उत्तर या तो वह स्वयं खोजता है या फिर दूसरों से प्राप्त करता है । इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं एक तो यह कि मनुष्य में सीखने की प्रवृत्ति जन्म से ही होती है और दूसरी यह कि प्रश्नोत्तर करके सीखना मनुष्य का स्वभाव है । इन्हीं दो बातों के कारण ही आज का मानव ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अपार प्रगति और विकास कर पाया है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य सभ्यता के आदिकाल से ही अपने अनुभवों द्वारा संचित ज्ञान को अपने आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करता आया है । यह कार्य कथन उपदेश, वर्णन, विवरण और व्याख्यान तथा प्रयोग प्रदर्शन के द्वारा किया जाता था जिनको हम ज्ञान प्रदान करने के मौखिक साधन मानते हैं । इन साधनों का प्रचलन आज के विज्ञान के युग में बहुत कम हो गया है । आज का युग 21वीं शताब्दी का युग है और इस युग में ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी एवं उद्योग के क्षेत्र में भारी विस्फोट हुआ है । विज्ञान की खोजों और अविष्कारों ने तो पुरानी मान्यताओं को बदल डाला है । आज मानव जीवन के सभी क्षेत्र विज्ञान से प्रभावित हैं । यहां तक कि धर्म और दर्शन की व्याख्या भी विज्ञान के आधार पर होने लगी है । यही कारण है कि शिक्षा भी विज्ञान के प्रभाव और तकनीकी से अछूती नहीं है । आज शिक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकियों का प्रयोग होने लगा है । विज्ञान के क्षेत्र में नए-नए सिद्धान्तों के प्रतिपादन और उनके आधार पर रेडियो, टेलीविजन और वीडियो आदि के अविष्कारों ने शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है और प्रचुर मात्रा में इन साधनों का प्रयोग शिक्षा जगत में सम्प्रेषण हेतु

Scanned by CamScanner

किया जाने लगा है । वैसे तो छापे की मशीनों के अविष्कार से ही ज्ञान को पुस्तकों के रूप में संचित करने और उसे दूर-दूर तक भेजने की व्यवस्था बहुत पहले ही हो चुकी थी । परन्तु इस आधुनिक युग में यह सब सोच-समझकर शिक्षण के विस्तार के रुप में किया जाता है । आज शिक्षा शास्त्री शिक्षा की प्रत्येक समस्या को वैज्ञानिक ढंग से देखने लगे हैं- चाहे यह शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या की समस्या हो, चाहे पाठ्यक्रम के निर्माण की, चाहे शिक्षण विधियों के निर्माण की, चाहे शैक्षिक प्रशासन एवं संगठन की या फिर पढ़ाने हेतु अनुदेशनात्मक सामग्री के प्रयोग की समस्या हो । इन सभी समस्याओं को वैज्ञानिक ढंग से देखा और परखा जाता है और समाधान हेतु तरीकों की खोज की जाती है ।

सफल शिक्षण की कसौटी पाठ का बालकों की समझ में आना है अर्थात शिक्षक कक्षा में जो कुछ पढ़ाता और अनुदेशन देता है उसका सम्प्रेषण हो । विद्यार्थी विषय सामग्री को ग्रहण कर सकें । समाज विज्ञान, विज्ञान, कला एवं भाषा के किसी भी पाठ को समझाने के लिये शिक्षक जिन साधनों को अपनाता है, उनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । एक तो वे साधन हैं जिनके बिना शिक्षण कार्य चल ही नहीं सकता या चलता है तो अपने अधूरे रुप में । इस प्रकार के साधनों में पाठ्य-पुस्तकें हैं । दूसरी प्रकार के वे साधन हैं जिनसे पाठ को समझाने में सहायता मिलती है । इन साधनों को हम सहायक साधन व अनुदेशनात्मक साधन कहते हैं जिनके प्रयोग से शिक्षक के लिये अनुदेशन प्रक्रिया सहज और प्रभावशाली हो जाती है । प्रत्येक शिक्षक को अन्य विषयों के शिक्षण की तरह हिन्दी शिक्षण में भी उचित अनुदेशनात्मक सामग्री तथा साधनों का प्रयोग करना पड़ता है । इसलिये हमारे लिये यह जानना आवश्यक हो जाता है कि अनुदेशनात्मक सामग्री व साधनों से क्या तात्पर्य है ? ताकि इनका प्रयोग उचित समय पर उचित ढंग से किया जा सके ।

अनुदेशनात्मक सामग्री का अर्थ : अनुदेशनात्मक सामग्री से हमारा अभिप्राय ऐसी सामग्री व ऐसे साधनों से है जिनके प्रयोग से अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके और शिक्षण प्रक्रिया को सफल बनाया जा सके । हिन्दी शिक्षक साहित्य की विभिन्न विधाओं के पाठों जैसे कविता शिक्षण, गद्य शिक्षण, कहानी शिक्षण, नाट्य शिक्षण, व्याकरण शिक्षण हेतु छात्र-छात्राओं को अनुदेशन देने के लिये जिस किसी भी साधन, उपकरण और सहायक सामग्री का प्रयोग करता है उसे अनुदेशनात्मक सामग्री कहा जाता है क्योंकि इससे अनुदेशन प्रक्रिया के सम्पन्न होने में सहायता मिलती है । अच्छे अनुदेशन के लिये शिक्षक और विद्यार्थी के बीच सही ढंग से सम्प्रेषण का होना अत्यन्त आवश्यक है । इस सम्प्रेषण प्रक्रिया में शिक्षक और विद्यार्थी की ज्ञानेन्द्रियों की भूमिका बहुत बड़ी होती है अर्थात अत्यन्त सार्थक होती है । विद्यार्थी जो कुछ भी सीखते हैं उसमें अधिकतर आंखों और कानों का प्रयोग होता है या फिर एक साथ ही दोनों का प्रयोग होता है । इसलिये अनुदेशन प्रक्रिया में अनुदेशनात्मक सामग्री का आधार ज्ञानेन्द्रियां ही होती हैं । ज्ञानेन्द्रियों की दृष्टि से अनुदेशनात्मक सामग्री मुख्य रुप से तीन भागों में विभाजित की जा सकती है । (1) श्रव्य सामग्री (2) दृश्य सामग्री (3) श्रव्य एवं दृश्य सामग्री ।

इस प्रकार सभी प्रकार की सामग्री व साधन जिसका सम्बन्ध विद्यार्थियों के सुनने और देखने से होता है, और शिक्षण प्रक्रिया व अनुदेशन क्रिया को प्रभावपूर्ण एवं सशक्त बनाना है, उन सभी को अनुदेशनात्मक सामग्री के नाम से पुकारा जाता है ।

पाठ्य सामग्री मूलभूत सामग्री होती है । इस प्रकार की सामग्री के बिना किसी प्रकार का अनुदेशन नहीं हो सकता क्योंकि इस का प्रयोग शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिये आवश्यक है । हिन्दी शिक्षण में अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में पाठ्य पुस्तकों का बहुत अधिक महत्त्व है । हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं के शिक्षण के लिये पाठ्य पुस्तकें आधार बनती हैं । इन पाठ्य पुस्तकों के द्वारा ही बालक में भाषा शिक्षण के चार कौशल- श्रवण कौशल, भाषण कौशल, पठन कौशल और लेखन कौशल का विकास किया जा सकता है । पाठ्य सामग्री छात्र एवं छात्राओं का सच्चे मित्र की तरह मार्गदर्शन करती हैं । पाठ्य सामग्री अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में भी पूर्ण रूप से सहयोग देती है । पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य प्रकार की पुस्तकें हैं जिनका अध्ययन छात्र-छात्राओं को यथा आवश्यकतानुकूल करना चाहिये जैसे पूरक पुस्तक, अभ्यास पुस्तिका, शिक्षक निर्देशिका, सन्दर्भ ग्रन्थ, शब्दकोश, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं आदि ।

हिन्दी शिक्षण में अनुदेशनात्मक सामग्री का महत्त्व

शिक्षक हमेशा मौखिक साधनों के माध्यम से बालकों को समझाने में सफल नहीं होता है तो उसे श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग करना पड़ता है । क्योंकि इस प्रकार की सामग्री का सम्बन्ध छात्र-छात्राओं की इन्द्रियों से होता है । ये सामग्री उनकी इन्द्रियों को प्रेरित करती है और पाठ से सम्बन्धित भावों एवं विचारों को ग्रहण करने में सहायक सिद्ध होती है । इनके प्रयोग से छात्र-छात्राओं का ज्ञान निश्चित हो जाता है क्योंकि जो कुछ वह सुन लेता है और वही सब कुछ आंख से देखता है तो उसका भ्रम मिट जाता है और पाठ के सार को समझने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होती । एक चीनी कहावत के अनुसार "एक बार देखना हजार बार सुनने से अधिक उत्तम है ।" ऐसे ही विचार श्री फाउलर ने व्यक्त किये हैं । उनके कथनानुसार, "एक चित्र बहुधा इतने विचार प्रस्तुत कर देता है जो कई पुस्तकों से अधिक होते हैं ।" श्रव्य दृश्य सामग्री के प्रयोग पर रुसो, पेस्टलाजी तथा अन्य शिक्षा शास्त्रियों ने भी बहुत बल दिया है । क्योंकि अनुदेशनात्मक सामग्री, साधन व उपकरण पाठ को रोचक, सरल तथा मनोरंजक बना देते हैं और छात्र-छात्राएं बिना किसी कठिनाई के सहज ढंग से ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं । इनके प्रयोग से सीखे जाने वाले विषय के कई पक्षों पर जो सामान्य रुप से पाठ्य पुस्तकों में नहीं होते हैं, उन पर प्रकाश डलता है । इसके अतिरिक्त जो विचार तथा अनुभव मौखिक रुप में व्यक्त नहीं किये जा सकते, उनके लिये इस प्रकार की सामग्री अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होती है । इनके सदुपयोग से अनुदेशनात्मक एवं शैक्षिक आधार प्रबल एवं सशक्त बन जाते हैं । फ्रांसीसी डब्ल्यू नायल ने इस सन्दर्भ में उचित ही

Scanned by CamScanner

कहा है कि "किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम का आधार अच्छा अनुदेशन है और श्रव्य-दृश्य प्रशिक्षण-साधन इस आधार के आवश्यक अंग हैं ।"

इस प्रकार श्रव्य-दृश्य सामग्री की आवश्यकता और महत्त्व को निम्नलिखित ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है ।

1. पाठ का जो कठिन अंश मौखिक अभिव्यक्ति के माध्यम से स्पष्ट नहीं हो पाता वो श्रव्य-दृश्य सामग्री के द्वारा बड़ी सहजता और सरलता से स्पष्ट हो जाता है।
2. श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से समझाई गई बात एवं तथ्य उसी प्रकार ज्यों के त्यों एक लम्बी अवधि तक याद रहते हैं ।
3. इनके द्वारा पाठ को रुचिकर और बोध गम्य बनाया जा सकता है ।
4. इनके प्रयोग से शिक्षक कम समय में अधिक ज्ञान प्रदान कर सकता है ।
5. इनके प्रयोग से छात्र-छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास होता है । क्योंकि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विद्यार्थी जब कोई वस्तु देखता है तो उसके विषय में कल्पना अवश्य करता है । ठीक इसी प्रकार श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से कल्पना शक्ति का विकास किया जा सकता है ।
6. इनके प्रयोग से शिक्षक छात्र-छात्राओं को पाठ में सहभागी बना सकता है । जिससे अधिगम प्रक्रिया से सजीवता आ जाती है । इस दृष्टि से श्रव्य-दृश्य सामग्री का अनुदेशन प्रक्रिया में बहुत योगदान होता है ।
7. इनके प्रयोग से व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए कमजोर छात्र-छात्राओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जा सकता है ।
8. श्रव्य-दृश्य सामग्री के आवश्यकतानुकूल प्रयोग से विद्यार्थी अधिक सक्रिय होकर सीखने का प्रयास करते हैं ।
9. मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से श्रव्य दृश्य सामग्री का समय-समय पर प्रयोग करना उचित है क्योंकि सीखने (अधिगम) के संसाधनों का विस्तार होता है ।
10. वास्तविक रूप से सीखना (अधिगम) उसे कहते हैं जब कोई बात एक परिस्थिति में सीखकर दूसरी परिस्थिति में उसे लागू किया जाये । इसे हम अधिगम स्थानान्तरण कहते हैं । श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से ऐसा करना सम्भव है ।

इस प्रकार श्रव्य-दृश्य सामग्री का अनुदेशन प्रक्रिया में बहुत अधिक महत्त्व है । इसका महत्त्व दोहरा है । अनुदेशनात्मक सामग्री के द्वारा शिक्षक के लिये सम्प्रेषण करना

Scanned by CamScanner

अनुदेशनात्मक सामग्री का उचित प्रयोग

शिक्षक को अनुदेशनात्मक सामग्री के उचित प्रयोग के लिये निम्नलिखित सावधानियों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है । निम्न अवस्थाओं में सहायक सामग्री का प्रयोग आवश्यक है–

1. जब वास्तविक पदार्थ आकार में इतना बड़ा हो कि कक्षा में ले जाना सम्भव न हो सके, जैसे ऐतिहासिक भवन कुतुबमिनार, लालकिला, जामा मस्जिद आदि ।

Scanned by CamScanner

2. जब कोई वस्तु आकार में इतनी छोटी और सूक्ष्म हो जिसे देखा न जा सके जैसे एटम और एमीबा आदि ।
3. जब वास्तविक पदार्थ का प्राप्त करना सम्भव न हो जैसे भूतकाल में चलने वाले सिक्के, दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुएं, अस्त्र-शस्त्र और उस समय के लोगों की वेष-भूषा आदि ।
4. जब वस्तु तीव्र गति से चलने वाली हो जैसे हवाई जहाज, रेलगाड़ी और बस आदि ।
5. जब जीवित जन्तुओं का निरन्तर विकास दिखाने की आवश्यकता पड़े, जैसे मच्छर मक्खी का बढ़ना ।
6. जब किसी वस्तु की गति दिखाई न दे सके, जैसे-विद्युत ।
7. जब मानव शरीर की आन्तरिक क्रियाओं की दिखाने की आवश्यकता पड़े तो, जैसे रक्त संचार और पाचन क्रिया आदि ।
8. जब बहुत दूर स्थिति वस्तुओं की जानकारी देनी हो, जैसे- विभिन्न देशों के रिवाज, खानपान, रीतिरिवाज, उत्सव और उनकी परम्परायें आदि ।

उचित प्रयोग कैसे किया जाये ?

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जो अनुभवहीन शिक्षक होते हैं उनसे यह गलती हो जाती है कि किसी भी विषय विशेष को पढ़ाने हेतु पर्याप्त मात्रा में अनुदेशनात्मक सामग्री का संग्रह तो कर लेते हैं लेकिन कक्षा शिक्षण में उनका सही प्रकार से प्रयोग करने में असमर्थ रहते हैं । अनुदेशनात्मक सामग्री का सही ढंग से प्रयोग हेतु कुछ नियम और सिद्धान्त हैं जिनका अनुसरण प्रत्येक शिक्षक को करना चाहिये ।

(1) पाठ के तीन महत्त्वपूर्ण सोपान होते हैं या हम इनको तीन अवस्थाएं भी कह सकते हैं- प्रस्तावना पहली अवस्था, प्रस्तुतीकरण दूसरी अवस्था और पुनरावृत्ति तीसरी अवस्था । प्रस्तावना के अन्तर्गत सहायक सामग्री का प्रयोग पाठ में रुचि पैदा करने के लिये किया जाता है, प्रस्तुतीकरण में विषय सामग्री के विभिन्न पहलुओं को सूक्ष्मता से समझाने हेतु और पुनरावृत्ति में पाठ के मूल्यांकन की जांच हेतु सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिये ।

(2) सहायक सामग्री और उपकरणों का प्रयोग पाठ के सूक्ष्म भाग और प्रसंगों को स्पष्ट करने के लिये ही करना चाहिये ।

(3) सामग्री का चयन करते समय क्रियाशीलता, व्यावहारिकता और उपयोगिता के सिद्धान्तों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये ।

(4) सामग्री एवं साधनों के प्रदर्शन से पहले आवश्यक भूमिका का सहारा अवश्य ही लेना चाहिये । इससे विद्यार्थी पाठ को सहज और सरलता से समझ जायेंगे और समय की भी बचत होगी ।

(5) इन साधनों एवं सामग्री का प्रयोग उस समय महत्त्वपूर्ण और सार्थक हो जाता है जब कक्षा शिक्षण में इनकी नितान्त आवश्यकता महसूस की जाये । कई बार शिक्षक अपने आस पास कई प्रकार की सामग्री एकत्रित कर लेते हैं और उनका प्रयोग ठीक प्रकार से नहीं करते तो पाठ का ध्येय असफल हो जाता है।

(6) शिक्षक को अनुदेशनात्मक सामग्री का प्रदर्शन केवल देखने मात्र के लिये नहीं करना चाहिये बल्कि इसका प्रदर्शन तब तक रहे जब तक विद्यार्थी उस पर पर्याप्त अवलोकन और चिन्तन कर ले और पाठ की दिशा को समझ ले ।

(7) शिक्षक प्रदर्शित सामग्री से सम्बन्धित छात्र-छात्राओं से प्रश्न अवश्य पूछे इससे यह पता चलता है कि वे पाठ को सरलता और सुगमता से समझने में समर्थ हैं।

(8) प्रयोग में लाई जाने वाली सामग्री में विविधता का होना अत्यन्त आवश्यक है । एक ही तरह के उपकरणों और साधनों के प्रयोग से विद्यार्थी उबने लगते हैं ।

(9) सामग्री व साधनों को मेज पर रखकर या दीवार पर टांग कर प्रयोग करना चाहिये अन्यथा हाथ में पकड़े रहने से शिक्षक हाथ को अन्य कार्यों के लिये प्रयोग में नहीं ला सकेगा और कक्षा के सभी छात्र छात्राएं लाभान्वित भी नहीं हो सकेंगे ।

(10) अनुदेशनात्मक सामग्री के प्रदर्शन के बाद शिक्षक को अपने पाठ पर ध्यान देना चाहिये क्योंकि शिक्षक का उद्देश्य सामग्री को दिखाना नहीं बल्कि पाठ को जागरुकता से पढ़ाना है । अर्थात् सामग्री ध्येय नहीं बल्कि साधन मात्र है ।

(11) शिक्षक को बिना किसी आवश्यकता के सामग्री एवं साधनों को कक्षा में नहीं ले जाना चाहिये क्योंकि पाठ के साथ इसका होना कोई रसम व रिवाज नहीं है।

(12) सामग्री एवं साधनों को प्रदर्शन के बाद उठा लेना या हटा देना चाहिये अन्यथा छात्र-छात्राओं का ध्यान सामग्री की ओर रहेगा और पाठ से ध्यान हट जायेगा।

(13) आधुनिक दो उपागमों हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर में से शिक्षक हार्डवेयर की गुणवत्ता पर ध्यान देते हैं और साफ्टवेयर पर ध्यान नहीं देते । ऐसा करना उनकी भूल और ना समझी है क्योंकि सॉफ्टवेयर के बिना हार्डवेयर का कोई महत्त्व नहीं है ।

Scanned by CamScanner

पाठ-योजना
(Lesson-Planning)

प्रस्तावना
(Introduction)

योजना अच्छे शिक्षण के अनिवार्य तत्त्वों में एक है। प्रत्येक के लिए कौशल और अभ्यास की आवश्यकता होती है। शिक्षण भी एक कला है, इसके लिए भी कौशल और अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसे इतिहास की शिक्षण-विधियों से परिचित होना चाहिए और उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। इतना सब कुछ होने पर भी अध्यापक तब तक शिक्षण-कार्य में सफल नहीं हो सकता जब तक वह कक्षा में जाने से पहले सावधानी से पाठ-योजना नहीं बनाता। एक नये अध्यापक के लिए तो पाठ-योजना अत्यन्त आवश्यक है। सुनियोजित पाठ-योजना के बिना उसमें आत्म विश्वास उत्पन्न नहीं हो सकता।

शिक्षा-क्षेत्र में काम करने वाले सभी व्यक्ति महान् शास्त्री हर्बर्ट (Herbert, 1776—1841 A. D.) के ऋणी हैं जिन्होंने शिक्षण को सावधानी से आयोजित करने पर बल दिया। उन्होंने कुछ ऐसे शिक्षण चरणों का सुझाव दिया है जिन्हें सामान्यत: औपचारिक शिक्षण-चरणों (Formal Teaching Steps) की संज्ञा दी जाती है। ये शिक्षण-चरण नये अध्यापकों का मार्ग दर्शन करने में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। ब्लैक-बोर्ड पर निम्नलिखित बातें लिखने के बाद इन चरणों को आरम्भ किया जाता है :-

कक्षा (Class)

विद्यार्थियों की औसत आयु (Average Age of Students)

पीरियड की अवधि (Duration of Period)

विषय (Subject)

प्रकरण (Topic)

तिथि (Date)

Scanned by CamScanner

शिक्षण-चरण इस प्रकार हैं :-

सामान्य उद्देश्य (General Aims) — इतिहास के प्रत्येक पाठ के सामान्य उद्देश्य न्यून-अधिक रूप से एक ही होते हैं। वे इस प्रकार हैं :-

1. इतिहास में रुचि विकसित करना।
2. कल्पनात्मक, तर्कात्मक तथा निर्णयात्मक योग्यताओं को विकसित करना।
3. सही, वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण विकसित करना।
4. विद्यार्थियों को मानव सभ्यता और संस्कृति की विकास-प्रक्रिया समझने में सहायता प्रदान करना।
5. प्राचीन अनुभवों के प्रकाश में विद्यार्थियों को भविष्य के लिए तैयार करना।
6. विद्यार्थियों को अनुभव कराना कि इतिहास एक सम्पूर्ण इकाई है और राष्ट्रीय इतिहास विश्व इतिहास का एक अंश है।
7. विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीय विवेक को विकसित करना तथा उन्हें विश्व शान्ति की ओर प्रवृत्त करना।
8. आलोचनात्मक चिन्तन, सामाजिक आयोजन तथा लोकतन्त्रात्मक जीवन विधि को विकसित करना।
9. मातृ-भूमि के प्रति प्रेम, प्राचीन के प्रति श्रद्धा तथा मानव-जाति के भविष्य के प्रति प्यार उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य (Specific Aims) — विशिष्ट उद्देश्य पढ़ाये जा रहे प्रकरण पर आधारित हैं। इतिहास का अध्यापक कोई भी ऐतिहासिक विषय पढ़ाते समय अपने सम्मुख कुछ विशिष्ट उद्देश्य रखता है।

शिक्षण सहायक साधन (Teaching Aids) — शिक्षण में प्रभावशाली और सुविधापूर्ण वातावरण उत्पन्न करने के लिए शिक्षण सहायक-साधनों की आवश्यकता पड़ती है। एक प्रसिद्ध कहावत है, "सौ बार कहने की अपेक्षा एक बार देखना अच्छा है।" ("One seeing is worth a hundred tellings.") ये सहायक साधन जटिल विषय को सरल रूप से प्रस्तुत करते हैं। ये विभिन्न शिक्षण-विधियों के पूरक हैं। श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग करते समय हिन्दी के अध्यापक को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएं :-

1. अध्यापक को हिन्दी के प्रकरण के अनुकूल श्रव्य-दृश्य साधनों का चयन करना चाहिए।
2. इन्हें पाठ के आरम्भ में नहीं दिखाना चाहिए बल्कि उचित समय पर दिखाना चाहिए। इन साधनों का प्रयोग तभी करना चाहिए जब स्थिति की मांग हो।

3. इन का प्रयोग समाप्त होने के पश्चात, इन्हें हटा लेना चाहिए।
4. यदि अध्यापक विद्यार्थियों के सामने नक्शे, डायग्राम, स्कैच आदि बनाता है, तो यह बेहतर होगा।
5. शिक्षण-सहायक साधन विद्यार्थियों की आयु और रुचि अनुकूल होना चाहिए।

पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge) — पढ़ाये जाने वाले हिन्दी के नये प्रकरण को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान के साथ सम्बन्धित करना चाहिए। इस के लिए विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है। नया पाठ आरम्भ करने से पहले अध्यापक को विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का सावधानी से परीक्षण करना चाहिए।

पाठ की प्रस्तावना (Introduction of the Lesson) — कार्य का अच्छा आरम्भ उसकी अर्द्धपूर्ति का द्योतक है। पाठ को कक्षा में कैसे आरम्भ किया जाये, यह अध्यापक की मानसिक चेतनता पर निर्भर करता है। नया पाठ आरम्भ करने से पहले अध्यापक की विद्यार्थियों के पूर्व-ज्ञान का परीक्षण करके उन्हें नये साल की प्राप्ति के लिए तैयार करना चाहिए। पाठ को आरम्भ करने से पहले अध्यापक को निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए :-

1. प्रकरण की प्रस्तावना संक्षिप्त एवं उचित होनी चाहिए।
2. पूर्व ज्ञान परीक्षण के लिए थोड़े से महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछने चाहिएं। पूर्व ज्ञान को नये ज्ञान से सम्बन्धित करने के लिए तीन से पांच प्रश्न पूछना पर्याप्त है।
3. समाचार-पत्र में वर्णित किसी घटना की सहायता से भी नये प्रकरण का शिक्षण आरम्भ किया जा सकता है।
4. इतिहास के पाठ के शिक्षण की सफलता उसकी प्रस्तावना पर ही निर्भर करती है।

प्रकरण का कथन (Statement of the Topic) — विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान की परीक्षा करने तथा नये पाठ की प्रस्तावना प्रस्तुत करने के पश्चात् अध्यापक को पढ़ाये जाने वाले प्रकरण का कथन करना चाहिए। उदाहरण के लिए – विद्यार्थियो, आज हम ..... के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

प्रस्तुतीकरण (Presentation) — प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक की नयी पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करनी होती है। इस प्रस्तुतीकरण में अध्यापक को निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए :-

1. पाठ को इकाइयों (Units) या विभागों (Sections) में बांटना चाहिए।
2. पाठ योजना पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ को तीन भाग – वस्तु (Matter) विधि (Method) तथा प्रत्याशित उत्तर (Expected Answer) — में बांटना चाहिए।

Scanned by CamScanner

3. हिन्दी की विषय वस्तु या तो मनोविज्ञानिक विधि से या कलानुक्रम के अनुसार गठित की जानी चाहिए।
4. अध्यापक को विद्यार्थियों के सक्रिय सहयोग से विषय-वस्तु को विकसित करना चाहिए।
5. आवश्यकतानुसार परावर्तन-विधि (Regressive Method) का भी प्रयोग करना चाहिए। इसकी सहायता से प्राचीन अनुभवों के आधार पर वर्तमान की व्याख्या में सहायता मिलेगी।
6. विद्यार्थियों को मानसिक रूप से रखने के लिए प्रश्न-विधि का अकसर प्रयोग करते रहना चाहिए।
7. हिन्दी के विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण विद्यार्थियों की मानसिक आयु के अनुकूल होना चाहिए। इसके लिए अध्यापक को निम्नलिखित सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए :-

(a) **चयन और विभाजन का सिद्धान्त** (Principle of Selection and Division)— क्या प्रस्तुत करना है और कितना प्रस्तुत करना है – हिन्दी के अध्यापक को इन दो बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए, क्योंकि हिन्दी के कई प्रकरण मिडल कक्षाओं को पढ़ाने होते हैं, कई हाई और कई हायर-सैकण्डरी के विद्यार्थियों को पढ़ाने होते हैं। अत: अध्यापक को विषय सामग्री का चयन कक्षा के अनुकूल सोच-समझ कर करना चाहिए और उसे इकाइयों या विभागों में विभाजित करना चाहिए।

(b) **उत्तरोतर स्पष्टता का सिद्धान्त** (Principle of Successive clearness) — अध्यापक को तब तक अगली इकाई या अगले भाग (Section) की ओर नहीं बढ़ना चाहिए जब तक पिछली इकाई या भाग की विषय-वस्तु विद्यार्थियों को स्पष्ट रूप से समझ न आ जाये। छोटी कक्षाओं के विद्यार्थी अपने ध्यान को अच्छी प्रकार से केन्द्रित नहीं कर पाते, इसलिए वहां इस सिद्धान्त की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है।

(c) **बारी-बारी संलग्नता, पुनर्विचार तथा सम्बद्धता का सिद्धान्त** (Principle of Alternate Absorption, Reflection and Integration) — हिन्दी का कोई पाठ पढ़ाते समय पाठ को कई भागों में बांटना होता है। अध्यापक को पहला भाग पूरी संलग्नता से पढ़ाना चाहिए। उसके पश्चात् उसे दूसरा भाग पूरी संलग्नता के साथ पढ़ाना चाहिए। फिर पहले भाग पर पुनर्विचार कर के उसे दूसरे भाग के साथ सम्बन्धित करना चाहिए। इस प्रकार बारी-बारी संलग्नता, पुनर्विचार तथा सम्बद्धता के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए उसे पूरा पाठ पढ़ाना चाहिए।

विभागीय पुनरावृति (Sectional Recapitulation) — जैसा कि पहले कहा जा चुका है विषय-सामग्री को विभिन्न इकाइयों या विभागों में बांटना चाहिए। जब तक अध्यापक को विश्वास न हो जाए कि विद्यार्थी एक भाग की विषय सामग्री अच्छी प्रकार से समझ चुके हैं, तब तक उसे अगले भाग की ओर नहीं बढ़ाना चाहिए। इस के लिए विभागीय पुनरावृत्ति अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापक को पुनरावृत्ति सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछ कर इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि विद्यार्थियों को पढ़ाई गई विषय-सामग्री अच्छी तरह समझ आ गई है। इसे उत्तरोत्तर स्पष्टता का सिद्धान्त भी कहते हैं।

अन्तिम पुनरावृत्ति (Final Recapitulation) — पाठ का प्रत्येक भाग पढ़ा लेने के पश्चात् अध्यापक को इस बात का परीक्षण करना चाहिए कि विद्यार्थियों को पाठ कहां तक समझ आया है। इस के लिए समूचे पाठ पर आधारित कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न विद्यार्थियों से पूछे जाने चाहिएं। अन्तिम पुनरावृत्ति का उद्देश्य विद्यार्थियों के मन में पाठ को अच्छी तरह बिठाना है।

ब्लैक-बोर्ड सार (Black-Board Summary) — 1. विभागीय पुनरावृत्ति से ही ब्लैक-बोर्ड सार लिखना आरम्भ कर देना चाहिए। कुछ अध्यापकों का विचार है कि पाठ के विकास के साथ-साथ ही ब्लैक-बोर्ड पर सार लिखते जाना चाहिए।

2. ब्लैक-बोर्ड पर पूरे वाक्य या परिच्छेद नहीं लिखने चाहिएं बल्कि केवल महत्त्वपूर्ण बातें लिखनी चाहिएं।

गृह-कार्य (Home Work) — 1. गृह-कार्य पढ़ाये गए प्रकरण पर आधारित निबन्धात्मक प्रश्नों के रूप में दिया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर लिखने के लिए कहा जा सकता है।

2. गृह-कार्य के लिए वस्तुनिष्ठ प्रश्न भी दिये जा सकते हैं।
3. दोनों प्रकार के प्रश्नों अर्थात् निबन्धात्मक एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के रूप में भी गृह-कार्य दिया जा सकता है।
4. विद्यार्थियों को पाठ में आये ऐतिहासिक स्थानों को नक्शे में भरने के लिए कहा जा सकता है।

पाठ योजना 1

कक्षा : आठवीं

विषय : हिन्दी

उपविषय : दहेज प्रथा निबन्ध

आयु : 12 से 13 वर्ष

Scanned by CamScanner

समय : 35 मिन्ट

तिथि :

साधारण सामग्री : साधारण कक्षालय, चाक, श्यामपट, झाड़न आदि।

सामान्य उद्देश्य : बच्चों में लिखित एवं मौखिक रूप से भाव व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य : बच्चों में तार्किक बुद्धि से विचार विमर्श करने की योग्यता पैदा करना।

धारणा : बच्चों को दहेज प्रथा के बारे जानकारी की धारणा पैदा करना।

ज्ञान एवं बोध : बच्चे दहेज प्रथा के अर्थ को समझ जायेंगे तथा इसके गुण व दोषों को समझने के योग्य होंगे।

पूर्व ज्ञान : बच्चे दहेज के बारे पहले से ही जानते हैं ।

पूर्व ज्ञान परीक्षा : 1. हमारे समाज में कौन-कौन सी बुराइयां हैं ?
2. कौन सी सामाजिक बुराइयां नारी के जीवन से सम्बन्धित हैं ?
3. दहेज प्रथा से क्या भाव है ?

उद्देश्य कथन : बच्चो, जैसा कि आपने बताया कि दहेज प्रथा सामाजिक बुराई है। आज हम दहेज प्रथा के विषय में पढ़ेंगे।

विधि : छ० अ० वर्णनात्मक एवं प्रश्नात्मक विधि द्वारा पढ़ायेगी।

विषय वस्तु	छा० अ० कार्य	छात्र कार्य	श्यामपट सार
विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को कुछ दिया जाता है। माता-पिता के इस विचार ने कि घर से आ रही कन्या को उनकी ओर से कुछ न कुछ अवश्य दिया जाना चाहिए ने दहेज प्रथा को जन्म दिया	प्रश्न दहेज प्रथा से क्या अभिप्राय: है ?	उत्तर दहेज प्रथा का अर्थ है कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को कुछ भेंट देना।	दहेज प्रथा कन्या – से देना

क्योंकि उनका अपनी कन्या के प्रति मोह होता है। दहेज प्रथा कब और कैसे शुरू हुई, इसके बारे में जैसे रामायण में लिखा है कि राजा जनक ने भी अपनी पुत्री सीता को दहेज दिया था।	दहेज प्रथा कब और कैसे शुरू हुई ?	इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है।	इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह प्रथा पुरातन समय से चली आ रही है।
यही उपहार भार के रूप में परिवर्तित हो गया। पहले इसे इच्छा से देते थे। फिर अनिच्छा का दान बन गया। पहले यह प्रथा थी। अब इसने कुप्रथा का रूप धारण कर लिया। आज के युग में दहेज एक अभिशाप है। दहेज के कारण बहुत सी बारातें वापिस हो जाती हैं। लड़की के पिता द्वारा लाख मिन्तें करने पर भी लड़के वाले उसकी लड़की छोड़ कर उसकी इज्जत से खेल जाते हैं। विवाह को जीवन भर का मेल न	दहेज प्रथा किस रूप में परिवर्तित हो गई?	यह एक भार के रूप में बदल गई।	दहेज प्रथा उपहार नहीं बल्कि भार के रूप में बदल गई।
	दहेज प्रथा से कौन से दुष्परिणाम निकले ?	कन्या द्वारा आत्महत्या। बारातों का वापिस होना।	कन्या द्वारा आत्महत्या, बारातों का वापिस होना।
	बारात खाली वापिस लौटने का क्या कारण है ?	दहेज का कम होना।	दहेज के कम होने के कारण बारातें खाली वापिस लौट जाती हैं।

Scanned by CamScanner

समझकर सौदा समझा जाने लगा है। इस प्रकार आज के युग में जो माता-पिता अच्छे दहेज का प्रबन्ध नहीं कर सकते उन्हें अपनी कन्याओं के लिए योग्य वर नहीं मिल सकते।			
इस प्रथा का अन्त करने के लिए भारत सरकार को कानून बनाना चाहिये जिसमें दहेज लेना-देना दोनों दण्डनीय हों पर इस कानून से कोई लाभ नहीं होगा। लोग गुप्त दान देना शुरू कर देंगे। हमारे देश की नारियों ने भी इसका अन्त करने के लिए काफी सहयोग दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में कई स्त्रियों ने शपथ ग्रहण की कि वे दहेज लेने वाले लड़कों से शादी नहीं करेंगी। इस प्रकार इस प्रथा का अन्त आ रहा है।	इस प्रथा का अन्त करने के लिए सरकार को क्या करना चाहिये?	सरकार को कानून बनाना चाहिये।	इस प्रथा का अन्त करने के लिए कानून बनाना चाहिये।
	हमारी स्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में किस बात की शपथ ग्रहण की ?	दहेज लेने वाले लड़कों से शादी नहीं करना।	अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में लड़कियों ने शपथ ग्रहण की कि दहेज लेने वाले लड़कों से शादी नहीं करेंगी।

Scanned by CamScanner

इस प्रथा का अन्त करने के लिए यह आवश्यक है कि लड़कियों को इतनी शिक्षा दी जाये कि वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो जाएं। बिना सुशिक्षा, प्रेम विवाह, अन्तर-जाति विवाह के दहेज प्रथा नहीं सुधर सकती।	इस कुप्रथा का अन्त कैसे किया जा सकता है।	सुशिक्षा स्वावलम्ब	इस कुप्रथा का अन्त सुशिक्षा, प्रेम-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा हो सकता है।

पुनरावृत्ति : 1. दहेज से क्या अभिप्राय है ?

2. प्रारम्भ में दहेज प्रथा के कौन-कौन से दुष्परिणाम निकले ?

3. इसका अन्त कैसे किया जा सकता है ?

गृह-कार्य : बच्चो, यह निबन्ध घर से अपने शब्दों में लिख कर लाना।

Scanned by CamScanner

4

सूक्ष्म शिक्षण द्वारा विभिन्न कौशलों का ज्ञान
(Knowledge of Various Skills through Micro-Teaching)

किसी भी राष्ट्र के भविष्य की आधारशिला उस देश के विद्यालयों में शिक्षण प्राप्त कर रहे छात्र (विद्यार्थी) होते हैं। इस लिये राष्ट्र का भविष्य विद्यालयों में दी जा रही शिक्षा पर निर्भर करता है। शिक्षा की सार्थकता और सुदृढ़ता शिक्षकों से प्रभावित होती है। शिक्षकों की गुणवत्ता उनके द्वारा प्राप्त किये गये प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। इस लिये वर्तमान में कार्यरत शिक्षकों और भावी शिक्षकों के प्रशिक्षण का स्तर उच्च, सशक्त एवं प्रभावशाली होना चाहिये। हमारे देश में अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम के मुख्य रूप से दो पहलू हैं- एक सैद्धान्तिक और दूसरा व्यावहारिक। इस प्रशिक्षण प्रणाली में सैद्धान्तिक पक्ष पर व्यावहारिक पक्ष की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है जिसके कारण हमारी शिक्षा रटने रटाने की प्रक्रिया बन कर ही रह गई है जबकि उपयोगिता की दृष्टि से शिक्षा का व्यावहारिक होना बहुत आवश्यक है। शिक्षा को व्यावहारिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से कार्यरत शिक्षकों और भावी शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिये एक नई शिक्षा तकनीकी को हमारे देश में प्रयोग में लाया जा रहा है जिसको माईक्रोटीचिंग (सूक्ष्म शिक्षण) के नाम से जाना जाता है।

सूक्ष्म शिक्षण का प्रशिक्षण सेवा पूर्व और सेवारत शिक्षकों को देना आज के तकनीकी युग की मांग है। इस प्रक्रिया द्वारा कम समय में अध्यापन कौशल का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। सेवारत शिक्षकों की अध्यापन प्रक्रियाओं में भी सुधार लाया जा सकता है। समय की बचत और व्यावहारिकता की दृष्टि से सूक्ष्म शिक्षण प्रणाली सुविधाजनक एवं उपयोगी है।

सूक्ष्म शिक्षण की परिभाषा

जैसे कि अभी हमने चर्चा की है कि सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षकों को प्रशिक्षण देने हेतु नवीन शिक्षण प्रणाली है और यह शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान व्यवस्था को देखते हुए बहुत कारगर और उपयोगी है। गत दो दशकों से इतना तो ज्ञात हो गया है कि शिक्षकों के प्रशिक्षण में इस प्रणाली को कम समय में अधिक उपयोगी पाया गया है। शिक्षाविदों के द्वारा सूक्ष्म शिक्षण की परिभाषायें दी गई हैं जिनके माध्यम से सूक्ष्म शिक्षण की व्याख्या की गई है। ये परिभाषाएं निम्न हैं –

Scanned by CamScanner

1. एलेन के अनुसार, "सूक्ष्म शिक्षण कक्षा के आकार एवं समय की दृष्टि से एक छोटे पैमाने का आयोजित शिक्षण है।"
2. वी. एम. शोर के अनुसार, "सूक्ष्म शिक्षण कम समय, कम छात्रों तथा कम-शिक्षण क्रियाओं वाली वास्तविक शिक्षण विधि है।"
3. एन. के. जंगीरा एवं अजीत सिंह के अनुसार, "सूक्ष्म शिक्षण शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु एक एक प्रविधि है जिसमें सामान्य कक्षा-कक्ष-शिक्षण की जटिलताओं को समाधान से कम किया जाता है"।

सामान्य कक्षा-कक्ष की जटिलताओं को निम्न ढंग से कम किया जाता है।

(1) एक समय में एक ही शिक्षण कौशल का अभ्यास किया जाता है।

(2) पाठ्य वस्तु को एक ही संप्रत्यय तक सीमित रखा जाता है।

(3) कक्षा के आकार को 5-10 विद्यार्थियों तक सीमित रखा जाता है।

(4) पाठ की अवधि को घटाकर 5-10 मिनट तक रखा जाता है।

बी. के. एवं एम. एम. ललिता के अनुसार, "सूक्ष्म शिक्षण वह प्रशिक्षण तकनीक है जिसमें शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि उनके द्वारा किसी एक संप्रत्यय को थोड़े से छात्रों को अल्प समय में विशिष्ट शिक्षण कौशलों का प्रयोग करके पढ़ाया जाये।"

एनसाईकलोपीडिया ऑफ एजुकेशन के अनुसार, "सूक्ष्म शिक्षण वास्तविक संरचित एवं शिक्षण का सरलीकृत लघु रूप है जिसका प्रयोग शिक्षक प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम विकास शोधकार्य हेतु किया जाता है।"

अपनी पुस्तक सूक्ष्म शिक्षण (Micro-teaching) में ऐलन और रियान (1968) ने सूक्ष्म शिक्षण के पांच मूलभूत आधार बतायें हैं जो निम्न हैं :-

I. सूक्ष्म शिक्षण वास्तविक शिक्षण है।

II. परन्तु इस प्रणाली में साधारण कक्षा शिक्षण की जटिलताओं को कम कर दिया जाता है।

III. एक समय में किसी भी एक विशेष कार्य एवं कौशल के प्रशिक्षण पर ही बल दिया जाता है।

IV. अभ्यास क्रम की प्रक्रिया पर अधिक नियन्त्रण रखा जाता है।

V. परिणाम सम्बन्धी साधारण ज्ञान एवं प्रतिपुष्टि (Feed-back) के प्रभाव की परिधि विकसित होती है।

इस लिये सूक्ष्म शिक्षण में, सूक्ष्म पाठ एक ही शिक्षण-कौशल पर आधारित रहता है। शिक्षक केवल उसी शिक्षण कौशल में दक्षता प्राप्त करने के लिये विषय वस्तु को किसी

एक छोटी इकाई पर पाठ योजना बनाता है और पाठ को पढ़ाता है। इस पाठ के माध्यम से वह शिक्षण कौशल का अधिकतम प्रयोग एवं अभ्यास करता है। यहां तक कि वह अन्य शिक्षण कौशलों की उपेक्षा करता है। सूक्ष्म पाठ की योजना शिक्षण कौशल पर निर्भर करती है। पाठ का उद्देश्य विषय सामग्री का ज्ञान देना नहीं होता बल्कि शिक्षण कौशल में निपुणता प्राप्त करना होता है।

सूक्ष्म शिक्षण की विशेषतायें

(I) यह शिक्षक-प्रशिक्षण तकनीक है न कि विषय सामग्री पढ़ाने की विधि है।

(II) इसे सूक्ष्म-शिक्षण की संज्ञा इस लिये दी जाती है कि सामान्य शिक्षण की जटिलताओं को दूर करते हुए इसे छोटे रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(III) इसके द्वारा एक ही समय में विषय वस्तु की केवल एक इकाई को ही पढ़ाया जा सकता है।

(IV) कक्षा में छात्रों की सख्या केवल 5-7 तक सीमित रखी जाती है।

(V) समय की अवधि भी केवल 5-10 मिनट की होती है।

(VI) सूक्ष्म शिक्षण भावी शिक्षकों (छात्र अध्यापकों) का विभिन्न शिक्षण कौशलों का प्रशिक्षण देने का सशक्त साधन है।

(VII) सूक्ष्म शिक्षण में पाठ की समाप्ति के तुरन्त बाद ही भावी शिक्षकों को प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।

(VIII) सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षण प्रशिक्षण की एक व्यक्तिगत तकनीक है। क्योंकि इसके द्वारा एक ही समय ही अध्यापक को ही प्रशिक्षित किया जा सकता है।

सूक्ष्म शिक्षण की उपयोगिता

वर्तमान में शिक्षण महाविद्यालयों में जिस ढंग से अध्यापक प्रशिक्षण किया जा रहा है, उसमें बहुत सी कमियां हैं। इस प्रशिक्षण के अन्तर्गत 35-40 विद्यार्थियों की संख्या को 35-40 मिनट की अवधि में पढ़ाना होता है। बिना किसी पूर्व तैयारी या प्रशिक्षण के बिना छात्राध्यापक कई कौशलों का प्रयोग करते हुए सफल ढंग से नहीं पढ़ा सकता। इसलिये छात्राध्यापकों को सफल एवं प्रभावशाली प्रशिक्षण का देना बहुत आवश्यक हो गया है। आज के तकनीकी के युग में शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में शोध कर्ताओं ने छात्र शिक्षण कार्यक्रम को सशक्त एवं सुदृढ़ करने हेतु कई तरीकों और साधनों का विकास करने का प्रयास किया है। व्यवहार परिवर्तन अन्त: क्रिया विश्लेषण अनुरूपण तथा सूक्ष्म शिक्षण जैसे कई नवीन प्रवर्तनों (New innovations) का समुचित विकास किया गया है और इनके माध्यम से शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम को ठोस एवं प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। इस क्षेत्र से सम्बन्धित आज तक जो शोध कार्य किये गये हैं, उनके निष्कर्ष से पता

Scanned by CamScanner

चला है कि सूक्ष्म शिक्षण प्रशिक्षण की सशक्त एवं प्रभावशाली तकनीक है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

सूक्ष्म शिक्षण के माध्यम से सामान्य कक्षा शिक्षण की जटिलताओं को निम्न तरीकों से कम किया जा सकता है –

(1) एक समय में एक ही कौशल का अभ्यास करवाया जाता है।

(2) विषय वस्तु को एक ही सम्प्रत्यय तक सीमित रखने की व्यवस्था है।

(3) कक्षा में केवल मात्र 5–10 छात्र होते हैं।

(4) पाठ शिक्षण की समय अवधि 5–10 मिनट होती है।

सूक्ष्म शिक्षण में ऐसे प्रावधान की व्यवस्था है जिससे भावी शिक्षकों को उनके पुनः शिक्षण में सुधार करने के लिये क्रमशः प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है। "शिक्षण–पुनः शिक्षण" का सूक्ष्म शिक्षण में चक्र बना रहता है और ये तब तक बना रहता है जब तक कि भावी शिक्षक शिक्षण कौशल में अपेक्षित स्तर तक निपुणता प्राप्त नहीं कर लेता। कौशल ग्रहण चरण या अवस्था के बाद स्थानान्तरण चरण का आयोजन किया जाता है, जिसमें भावी शिक्षक सूक्ष्म शिक्षण परिस्थिति से वास्तविक कक्षा–कक्ष में, सीखे गये कौशलों का अन्तःकरण करना सीखता है। इसलिये सूक्ष्म शिक्षण कार्यक्रमों का प्रयोग भावी शिक्षकों के कार्य को सरलीकृत एवं सुरक्षित परिस्थितियों में शिक्षण कौशलों का प्रशिक्षण देने हेतु किया जाता है जिसका व्यावहारिक रूप से प्रयोग भावी शिक्षक करते हैं।

सूक्ष्म शिक्षण के सिद्धान्त

ऐलन और रियान ने सूक्ष्म शिक्षण के कुछ सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है, जो निम्नलिखित हैं :–

I. सूक्ष्म शिक्षण के द्वारा वास्तविक शिक्षण किया जा सकता है।

II. सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत एक समय में एक ही कौशल के प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है।

III. इसमें प्रतिपुष्टि के प्रभाव से शिक्षण में सुधार होता है।

IV. परम्परागत सामान्य कक्षा–शिक्षण की कठिनाईयों व जटिलताओं को इसके माध्यम से दूर किया जा सकता है।

V. इसमें अभ्यास प्रक्रिया पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

Scanned by CamScanner

सूक्ष्म शिक्षण के सोपान

सूक्ष्म शिक्षण के सोपान निम्नलिखित हैं –

I. सैद्धान्तिक ज्ञान देना :– भावी शिक्षकों को सूक्ष्म शिक्षण सम्बन्धी आवश्यक सैद्धान्तिक जानकारी देने के लिये निम्न बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिये :–

(1) सूक्ष्म शिक्षम का अर्थ।

(2) इसका महत्त्व तथा उपयोग ।

(3) इसकी कार्य पद्धति।

(4) इस तकनीक को अपनाने हेतु आवश्यक परिस्थितियां और साधन।

II. शिक्षण कौशलों का परिचय :– इस सोपान के द्वारा भावी शिक्षकों को विभिन्न शिक्षण कौशलों से परिचित कराना चाहिये जैसे –

(1) शिक्षण कार्य में शिक्षण कौशलों का उपयोग तथा महत्त्व।

(2) शिक्षण कौशलों का तत्वों के रूप में विश्लेषण।

(3) भावी शिक्षक व्यवहार से सम्बधित तत्वों की चर्चा।

III. विशेष शिक्षण कौशल का चयन :– इस तकनीक के द्वारा एक समय में एक ही कौशल का अभ्यास कराया जाता है। इसलिये भावी शिक्षकों को अभ्यास कराने के लिये किसी एक कौशल का चयन कर लिया जाता है और उसके विषय में पर्याप्त रूप से जानकारी दी जाती है।

IV. आदर्श पाठ प्रदर्शन प्रस्तुतीकरण :– चयन किये हुए शिक्षण कौशल की पूरी जानकारी के बाद आदर्श सूक्ष्म पाठ भावी शिक्षकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। इस आदर्श प्रदर्शन पाठ को विभिन्न विधियों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे –

(1) आदर्श प्रदर्शन पाठ की लिखित योजना छात्राध्यापकों (भावी शिक्षको) को दी जा सकती है।

(2) वीडियो टेप पर रिकार्ड करके फिल्म रूप में दिखाया जा सकता है।

(3) टेप रिकार्डर पर टेप करके प्रशिक्षणार्थियों को सुनाया भी जा सकता है।

(4) प्रशिक्षक द्वारा पाठ को पढ़ा कर दिखाया जा सकता है।

V. आदर्श पाठ निरीक्षण एवं समालोचना :– आदर्श पाठ जिस रूप में भी छात्रों द्वारा देखा, सुना अथवा पढ़ा जाता है, उसका वे विश्लेषण करते हैं। समालोचना के लिये प्रत्येक कौशल के अलग-अलग निरीक्षण प्रपत्रों की प्रयोग विधि उन्हें समझा दी जाती है। इससे आदर्श पाठ प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को भी आवश्यक प्रतिपुष्टि मिल सकती है।

VI. सूक्ष्म पाठ योजना तैयार करना :– इस सोपान में उचित उपविषय का चुनाव करके भावी शिक्षक एक आदर्श पाठ योजना तैयार करते हैं। इसके लिये वे अपने शिक्षकों से परामर्श भी ले सकते हैं और शिक्षण प्रशिक्षण पर उपलब्ध सामग्री और पुस्तकों का अध्ययन भी कर सकते हैं।

VII. उचित परिस्थितियों का आयोजन :– इसमें शिक्षण कौशल का अभ्यास करने के लिये आवश्यक सुविधाएं जुटाने तथा उचित परिस्थितियों के निर्माण करने का प्रबन्ध किया जाता है। एन. सी. ई. आर. टी. (NCERT) ने निम्न प्रारूप सुझाया है :–

(1) छात्रों की संख्या – 5–10 तक

(2) पढ़ाने वाला – सहपाठी भावी शिक्षक

(3) पर्यवेक्षण कर्ता – प्राध्यापक और भावी शिक्षक

(4) सूक्ष्म पाठ की अवधि – 6 मिनट.

(5) सूक्ष्म शिक्षण चक्र की अवधि – 36 मिनट

इस 36 मिनट की अवधि का विभाजन निम्न है –

शिक्षण सत्र : 6 मिनट

प्रतिपुष्टि : 6 मिनट

पुन : योजना सत्र : 12 मिनट

पुन : शिक्षण सत्र : 6 मिनट

पुन : प्रतिपुष्टि : 6 मिनट

कुल समय : 36 मिनट

VIII. शिक्षण सत्र :– भावी शिक्षक 5 से 10 मिनट विद्यार्थियों को तैयार किये हुए सूक्ष्म पाठ को 6 मिनट तक पढ़ाता है। इस सूक्ष्म पाठ का निरीक्षण साथी भावी शिक्षक, शिक्षक या प्रशिक्षकों द्वारा निरीक्षण प्रपत्र के माध्यम से किया जाता है। इस कार्य के लिये वीडियो टेप या टेपरिकार्डर की भी सहायता ली जा सकती है।

IX. प्रतिपुष्टि प्रदान करना :– सूक्ष्म शिक्षण के द्वारा छात्राध्यापक को अपने पढ़ाये हुए पाठ के बारे में तत्काल प्रतिपुष्टि प्राप्त हो जाती है। प्रतिपुष्टि के लिये 6 मिनट का समय दिया जाता है। यदि सम्भव हो सके तो वीडियो टेप, ओडियो टेप और कलोज सर्किट टेलीविज़न आदि की भी सहायता इस कार्य के लिये ली जा सकती है।

Scanned by CamScanner

X. पुनः पाठ योजना बनाना :– प्रतिपुष्टि में पाई गई कमियों को दूर करने के लिये सूक्ष्म पाठ को फिर से नियोजित किया जाता है। भावी शिक्षक स्वयं ही शिक्षण पाठ की दोबारा योजना बनाता है। इस कार्य के लिये 12 मिनट का समय दिया जाता है। इस सत्र को पुनर्योजना सत्र भी कहा जाता है।

XI. पुनः शिक्षण :– फिर से नियोजित सूक्ष्म पाठ को 6 मिनट के लिये फिर उसी समूह को पढ़ाया जाता है। इसका निरीक्षण भी किया जाता है इस सत्र को पुनः शिक्षण सत्र का नाम भी दिया जाता है।

XII. पुनः प्रतिपुष्टि :– पुनः पढ़ाये गये पाठ के समाप्त होने पर भावी शिक्षक को फिर से प्रतिपुष्टि दी जाती है। सहयोगी भावी शिक्षक एक बार फिर पर्यवेक्षण करते हैं। यह सत्र 6 मिनट का होता है। इस सत्र को पुनः प्रतिपुष्टि सत्र का नाम भी दिया जाता है।

XIII. सूक्ष्म शिक्षण चक्र की पुनरावृत्ति :– इस सूक्ष्म शिक्षण चक्र में योजना से लेकर पढ़ाने, प्रतिपुष्टि प्रदान करने, पुनः योजना बनाने, पुनः पाठ पढ़ाने और पुनः प्रतिपुष्टि प्रदान करने आदि से सम्बन्धित भिन्न कार्य सम्मिलित हैं। इस प्रकार सूक्ष्म शिक्षण चक्र तब तक चलता रहता है जब तक भावी शिक्षक को पूर्ण रूप से आत्मविश्वास न हो जाये कि उसने शिक्षण कौशल में निपुणता ग्रहण कर ली है।

भारतीय सन्दर्भ में सूक्ष्म शिक्षण की आवश्यकता एवं महत्त्व

आज के तकनीकी युग में शिक्षक प्रशिक्षण कार्य क्रम में सूक्ष्म शिक्षण का अंह स्थान है। भारत के सन्दर्भ में इसके गुणों और उपयोगिता को देखते हुए इसकी आवश्यकता और भी अधिक है क्योंकि भारत में प्रचलित शिक्षक प्रशिक्षण प्रणाली दोषपूर्ण है। वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत प्रशिक्षण व्यावहारिक न होकर सैद्धान्तिक है और आज देश की परिस्थितियों को देखते हुए शिक्षा जगत में यह शिक्षक प्रशिक्षण प्रणाली कारगर नहीं है। दूसरी तरफ हम सूक्ष्म शिक्षण को देखते हैं तो पता चलता है कि शिक्षक प्रशिक्षण की यह तकनीक बहुत व्यावहारिक और कारगर है। भारतीय परिवेश में इस तकनीक को अपनाना बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। इससे शिक्षक प्रशिक्षण सुलभ एवं सुविधाजनक हो जाता है। इसकी आवश्यकता और महत्त्व निम्न कारणों से और अधिक बढ़ गया है और शिक्षक प्रशिक्षण की यह तकनीक शिक्षा जगत में दिन प्रतिदिन लोकप्रिय हो रही है।

(I) सूक्ष्म शिक्षण प्रविधि शिक्षण के विश्लेषणात्मक स्वरूप से सम्बन्धित है। इसके शिक्षण से जटिल कुछ विशेष शिक्षण व्यवहारों को विभिन्न शिक्षण कौशलों में विभाजित कर दिया जाता है जिनका अलग-अलग से अभ्यास कराना सरल होता है। शिक्षण की प्रकृति और स्वभाव को समझना अत्यन्त आसान हो जाता है।

(II) सामान्य कक्षा शिक्षण की जटिलताओं को कम करने में सूक्ष्म शिक्षण पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होता है क्योंकि इसमें कक्षा का आकार छोटा होता है और शिक्षण अवधि

को कम करके विषय वस्तु के किसी अंश को लेकर विशेष शिक्षण कौशल का अभ्यास कराया जाता है।

(III) इस प्रकार के शिक्षण में एक ही समय में एक शिक्षण कौशल का अभ्यास कराया जाता है जिससे शिक्षण में दक्षता प्राप्त होती है।

(IV) इससे विद्यार्थियों को वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का अवसर प्राप्त होता है।

(V) चिकित्सा के क्षेत्र में छात्र चिकित्सक को किसी भी व्यक्ति के शरीर के चीर फाड़ करने की अनुमति तब तक नहीं मिलती जब तक कि वह प्रयोगशालाओं में चीर फाड़ से सम्बन्धित पर्याप्त कौशल प्राप्त न कर ले। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भावी शिक्षक को कक्षा में पढ़ाने की तब तक अनुमति नहीं मिलती जब तक वह विभिन्न शिक्षण कौशलों को व्यावहारिक रूप से पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर लेता।

(VI) शिक्षण कौशलों में निपुणता प्राप्त कर लेने की दृष्टि से भी सूक्ष्म शिक्षण बहुत लाभप्रद है। इससे भावी शिक्षकों व छात्रों-दोनों के समय की बचत होती है। 5-10 छात्रों की कक्षा में अनुशासन बनाये रखना और छात्रों को शिक्षा देना बहुत सुविधाजनक होता है। लेकिन परम्परागत प्रशिक्षण में भावी शिक्षकों को अधिक विद्यार्थियों की कक्षा में 35 या 40 मिनट पढ़ाना बहुत कठिन हो जाता है। दूसरी बात यह है कि अनुभवहीन भावी शिक्षकों द्वारा समय का अपव्यय होता है। सूक्ष्म शिक्षण द्वारा इस अपव्यय को रोका जा सकता है।

(VII) सामान्य परम्परागत शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम या अभ्यास में एक भावी शिक्षक को प्रतिपुष्टि काफी समय बाद मिलती है और वह भी काफी अस्पष्ट जैसे चाकबोर्ड लेख में सुधार करना चाहिये। पाठ अच्छी तरह से तैयार करना चाहिये था, छात्रों का सहयोग लेना चाहिये था, आदि। इसके विपरीत विशेष कौशल की शिक्षण प्रविधि के अन्तर्गत पाठ की समाप्ति के बाद तुरन्त रूप से प्रतिपुष्टि हो जाती है।

(VIII) परम्परागत सामान्य शिक्षण में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखना कठिन होता है लेकिन सूक्ष्म शिक्षण में व्यक्तिगत विभिन्नता को पूरी तरह से ध्यान में रखा जाता है, क्योंकि एक समय में एक ही भावी शिक्षक को कौशल के अभ्यास करने के लिये कहा जाता है और वह अपनी योग्यता एवं गति के साथ कौशल का अभ्यास करता है।

(IX) सूक्ष्म शिक्षण में भावी शिक्षकों को अपने शिक्षण व्यवहार में पारिमार्जन करने का पर्याप्त रूप से अवसर मिलता है लेकिन परम्परागत शिक्षण में ऐसा नहीं होता।

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित और सार्थक होगा कि सूक्ष्म शिक्षण शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण कला में निपुणता प्राप्त करने की सशक्त और प्रभावशाली तकनीक है। लेकिन यह कहना कि सूक्ष्म शिक्षण में कमियां नहीं हैं तो हमारा ऐसा सोचना भी गलत है। इस तकनीकी की भी आलोचना हो रही है, इसका कारण है कि इसमें भी कमियां हैं। इस

Scanned by CamScanner

सूक्ष्म शिक्षण के गुण एवं लाभ

(1) सूक्ष्म शिक्षण पूर्व सेवाकालीन और सेवारत शिक्षकों को शिक्षण कौशलों का अभ्यास कराने के लिये सर्वोत्तम तकनीक है।

(2) पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे भावी शिक्षकों को शिक्षण कौशलों का अभ्यास करने के लिये किसी अन्य संस्था में जाना नहीं पड़ता। वे अपने शिक्षण महाविद्यालय में ही अभ्यास कर सकते हैं।

(3) कक्षा में छात्रों की संख्या सीमित होती है इसलिये अनुशासनहीनता की समस्या नहीं होती।

(4) भावी शिक्षकों (छात्राध्यापकों) को सूक्ष्म शिक्षण की सूक्ष्म पाठ योजना एवं शिक्षण के लिये विषय वस्तु की एक छोटी इकाई को ही तैयार करना पड़ता है।

(5) भावी शिक्षक का पूर्ण ध्यान एवं प्रयास एक पाठ में एक ही शिक्षण कौशल का अभ्यास करने की ओर रहता है।

(6) छात्राध्यापकों को सामान्य शिक्षण की लम्बी अवधि के पीरियड की समस्या का सामना करना नहीं पड़ता।

Scanned by CamScanner

(7) सूक्ष्म शिक्षण में एक समय में एक ही शिक्षण कौशल का अभ्यास कराया जाता है और कक्षा में छात्रों की संख्या सीमित होती है तो छात्राध्यापक सफलतापूर्वक पढ़ा लेता है, इससे उसका आत्म विश्वास और मनोबल बढ़ता है।

(8) पाठ का सही ढंग से निरीक्षण अध्यापक एवं सहपाठियों द्वारा सम्भव है।

(9) छात्राध्यापक जब पाठ की समाप्ति कर देता है तो तुरन्त समुचित रूप से प्रति पुष्टि दी जाती है।

(10) प्रतिपुष्टि के साथ आलोचनात्मक सुझाव दिये जाते हैं जो कि शिक्षण सुधार में लाभप्रद होते हैं।

(11) प्रतिपुष्टि के बाद भावी शिक्षक अपने पाठ में फिर से नियोजन करके पाठ में सुधार करने का पूरा पूरा प्रयास करता है।

(12) सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत भावी शिक्षकों को प्रशिक्षण व्यक्तिगत आधार पर दिया जाता है। इससे भावी शिक्षकों को अपनी योग्यता और गति के अनुसार शिक्षक कौशलों के अभ्यास का अवसर मिलता है।

(13) सूक्ष्म शिक्षण प्रक्रिया में छात्राध्यापक ओडियो टेप, वीडियो का प्रयोग करके अपने शिक्षण कौशल की गुणवत्ता का मूल्यांकन स्वयं कर सकता है।

सूक्ष्म शिक्षण की सीमाएं

आज के वैज्ञानिक युग में सूक्ष्म शिक्षण भावी शिक्षकों को शिक्षण का प्रशिक्षण देने के लिये प्रचलित तकनीकों में से एक सार्थक एवं संशक्त तकनीक है, लेकिन फिर भी भारत जैसे देश में इसकी कुछ सीमाएं भी हैं जो निम्न हैं –

(1) सूक्ष्म शिक्षण तकनीक द्वारा भावी शिक्षकों को प्रशिक्षण देने और उनको शिक्षण कौशलों में निपुण करने हेतु पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। लेकिन समय का अभाव होने के कारण इस तकनीक से लाभान्वित होना कठिन हो जाता है।

(2) शिक्षण महाविद्यालयों में सूक्ष्म शिक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना का कार्य बहुत खर्चीला होता है।

(3) सूक्ष्म शिक्षण भारतीय सन्दर्भ में पूर्ण रूप से व्यावहारिक नहीं हो पाता।

(4) सहपाठी भावी शिक्षकों की कक्षा वास्तविक छात्र-छात्राओं की कक्षा का विकल्प नहीं हो सकती।

(5) यह तकनीक अपने में पूर्ण विधि का रूप धारण नहीं कर सकती।

(6) इस तकनीक में तुरन्त प्रतिपुष्टि के लिये अनुभवी और प्रशिक्षित निरीक्षकों की आवश्यकता होती है जिनका सभी शिक्षण महाविद्यालयों में अभाव है।

(7) अनेक शिक्षण कौशलों का अभ्यास अलग-अलग करने से वास्तविक कक्षा-कक्ष में भावी शिक्षक का सफल होना कठिन हो जाता है।

(8) इसको किसी विधि विशेष का विकल्प नहीं माना जा सकता अपितु इसको किसी शिक्षण विधि का सहायक माना जा सकता है।

(9) शिक्षण को केवल मात्र विभिन्न शिक्षण कौशलों का समन्वय ही नहीं मानना चाहिये जैसे कि सूक्ष्म शिक्षण इसी बात को मान कर चलता है।

सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत हम भावी शिक्षकों को अनेक शिक्षण कौशलों का अभ्यास कराते हैं और उनमें से जिनका शिक्षण की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व होता है उनका फिर एकीकरण करके सामान्य कक्षा-कक्ष में पढ़ाने के लिये प्रेरित करते हैं ताकि भावी शिक्षक एक कुशल शिक्षक बन सके। सभी शिक्षण कौशलों में से तीन शिक्षण कौशल जो शिक्षण कुशलता के आधार माने जाते हैं वे इस प्रकार हैं :-

1. प्रश्न कौशल
2. उदाहरण कौशल
3. व्याख्या कौशल

ये तीनों शिक्षण कौशल परम्परागत शिक्षण में भी प्रयोग में लिये जाते रहे हैं और आज भी लिये जा रहे हैं और भविष्य में भी इनका प्रयोग अवश्य ही होता रहेगा। क्योंकि एक कुशल और प्रभावशाली शिक्षक बनने के लिये प्रश्न पूछने, उदाहरण देने और विषय वस्तु की व्याख्या करने की कला में निपुण होना बहुत आवश्यक है। परम्परागत शिक्षण में हम इनको कला का नाम देते हैं और सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि में इनको कौशल का नाम दिया गया है। इसका कारण है कि सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत कौशल विशेष का अभ्यास गहनता एवं बारीकी से कराया जाता है और फिर कक्षा में तकनीक रूप में उसको लागू किया जाता है। इन तीनों कौशलों का महत्त्व जितना परम्परागत शिक्षण में माना जाता रहा है उतना ही आज की आधुनिक शिक्षण प्रक्रिया में भी महत्त्व है।

इन तीनों कौशलों को सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत अपनाने और इनका सूक्ष्म अभ्यास कराने के बारे में यह कहना उचित होगा कि पुरानी शराब को नई बोतलों में डाला गया है क्योंकि इसमें नयापन (नवीनता) इतनी ही है कि इन कौशलों का अभ्यास वैज्ञानिक ढंग से कराया जाता है।

इन तीनों कौशलों की सूक्ष्म शिक्षण कौशलों के अन्तर्गत चर्चा करने से पहले हम एक-एक कौशल का परम्परागत सामान्य शिक्षण में क्या स्थान है इस बात की विस्तार से चर्चा करेंगे और फिर सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से प्रत्येक शिक्षण कौशल पर विचार करेंगे।

"पढ़ाने का अर्थ है कुशलतापूर्वक प्रश्न पूछना जिससे मन देखने, प्रबन्ध करने तथा कार्य करने के लिये विवश हो उठे" – थ्रिंग

Scanned by CamScanner

खोजपूर्ण प्रश्न कौशल
(Skill of Probing Questions)

प्रश्नों के माध्यम से विषय सामग्री को स्पष्ट तथा सरल बनाने का ढंग बहुत प्राचीन एवं परम्परागत है। ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने मनुष्यों के अव्यवस्थित ज्ञान को व्यवस्थित करने के लिये इस विधि को अपनाया था। यही कारण है कि यह विधि सुकराती विधि के नाम से भी जानी जाती है जिसका आज प्रचलित नाम 'प्रश्नोत्तर विधि' है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भी प्रश्नों का बहुत महत्त्व है। प्रश्न करना शिक्षा देने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसके द्वारा ही शिक्षक छात्र-छात्राओं के सम्पर्क में आता है और उनको ज्ञान देता है। प्रश्न छात्रों को प्रेरित करते हैं और उनकी शिक्षा प्राप्ति की क्रिया और दिशा का निर्देशन करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'शिक्षण की निपुणता' (Efficiency of Teaching) बहुत कुछ पूछे गये प्रश्नों तथा उनके बनाने पर निर्भर करती है। पार्कर महोदय ने अपनी पुस्तक 'शिक्षण पद्धतियां' में प्रश्नों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "प्रश्न आदत-कौशल स्तर के बाहर समस्त शैक्षिक क्रिया की कुंजी है।"

(The question is the key to all educative activity above the habit-skill level.).

इससे स्पष्ट है कि शिक्षण कला में प्रश्नों का सबसे अधिक महत्त्व है। प्रश्न करना एक कला और बहुत कुछ सीमा तक शिक्षक की कुशलता और उसके प्रश्न पूछने की योग्यता पर निर्भर करती है। एक अच्छा शिक्षक अवश्य ही एक अच्छा प्रश्नकर्ता होता है किन्तु प्रश्न पूछने की कला में प्रत्येक शिक्षक निपुण नहीं होता इसलिये सभी शिक्षकों को प्रश्नोत्तर की कला में निपुण होना चाहिये। रेमेंट का कहना है कि अच्छे प्रश्न करने की योग्यता प्राप्त करना प्रत्येक शिक्षक की इच्छा होना चाहिये। इस कला में दक्षता एवं निपुणता प्राप्त करने के लिये शिक्षकों को यह ज्ञात होना चाहिये कि प्रश्नों के क्या-क्या लक्षण होते हैं और उसका उपयोग किस प्रकार करना चाहिये।

सफल शिक्षण की दृष्टि से प्रश्नों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रश्नों के महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) आवश्यकतानुकूल प्रश्न पूछना पाठ के विकास में बहुत ही अधिक सहायक सिद्ध होता है।

(2) बीच-बीच में प्रश्न पूछने से छात्र शिक्षक के प्रत्येक वाक्य को बड़े ध्यान से सुनते हैं, ताकि वे उसके प्रश्नों का उत्तर दे सकें।

(3) प्रश्नों के पूछने से छात्रों की जिज्ञासा बनी रहती है और वे एकाग्रचित होकर पढ़ते हैं।

Scanned by CamScanner

(4) इनके माध्यम से छात्र-एवं छात्राओं की कल्पना और तर्क शक्ति और किसी गूढ बात या तथ्य को समझने की शक्ति का विकास होता है।

(5) छात्र-छात्राओं ने विषय के बारे में कितनी जानकारी प्राप्त कर ली है, इस बात का परीक्षण प्रश्नों द्वारा ही सम्भव है।

(6) उचित एवं खोजपूर्ण प्रश्नों के माध्यम से छात्रों को प्रोत्साहित करके उनकी कल्पना शक्ति एवं सृजनात्मक शक्ति का विकास भी किया जा सकता है।

खोजपूर्ण प्रश्नों के उद्देश्य

शिक्षक का यह प्रयास होना चाहिये कि वह समयानुकूल प्रश्न पूछकर छात्र एवं छात्राओं को अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्ति में सहायता दें और उनको इस योग्य बनायें कि वे ज्ञान सम्बन्धी तथ्यों को तर्क वितर्क की कसौटी पर कस कर स्वीकार करें। इन बातों को ध्यान में रखते हुए खोजपूर्ण प्रश्नों के उद्देश्य निम्न होने चाहिएं :-

1. छात्र-छात्राओं के ज्ञान, ज्ञान के प्रयोग और उनके चातुर्य का पता लगाना।
2. प्रश्नों के द्वारा कक्षा में सजगता लाना।
3. छात्रों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना।
4. उनकी कठिनाईयों का निवारण करना।
5. उनकी अभिव्यक्ति क्षमता का पता लगाना।
6. पाठ को रूचिकर बनाना और छात्र-छात्राओं के ध्यान को आकर्षित करना।
7. विद्यार्थियों की समझ में आ रहा है या नहीं इस बात का पता लगाना।
8. छात्रों के संकोच और झिझक को दूर करते हुए आत्माभिव्यक्ति के विकास के लिये प्रोत्साहित करना।
9. उनमें स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना।
10. छात्र-छात्राओं के द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान का मूल्यांकन करना।

Scanned by CamScanner

खोजपूर्ण प्रश्न कौशल के घटक

इस कौशल के पांच घटक हैं जो निम्न हैं –

I. अनुबोधन (Prompting) :— संकेतों के माध्यम से विद्यार्थियों को सही उत्तर देने के लिये प्रोत्साहित करना ही अनुबोधन है। अनुबोधन तकनीक निम्नलिखित रूप से सहायक होती है :–

(1) आत्म विश्वास का विकास होता है।

(2) लम्बे समय तक उत्तर याद रह सकता है।

(3) प्रोत्साहन का मिलना।

(4) विषय सामग्री के बारे में स्पष्ट बोध होता है।

II. अधिक सूचना प्राप्ति (Seeking further information) :— ये प्रश्न छात्रों से पाठ से सम्बन्धित अधिक सूचना प्राप्ति हेतु पूछे जाते हैं। सूचना प्राप्ति प्रविधि का प्रयोग प्रश्न के उत्तर के अधूरा होने पर भी किया जाता है। इस प्रविधि के अन्तर्गत शिक्षक 'क्या' 'कयों' 'कैसे' प्रकार का प्रश्न पूछ कर अधिक सूचना प्राप्त करने का प्रयास करता है।

Scanned by CamScanner

III. पुनः केन्द्रीयकरण (Refocussing) :— इस तकनीक का प्रयोग सही उत्तर प्राप्त करने की स्थिति में किया जाता है। इसका ध्येय छात्र के सही उत्तर की परिपुष्टि करना होता है। इसमें छात्र के उत्तर के महत्त्व का बोध होता है। इस प्रकार इस तकनीक में समानता, भिन्नता, अन्तर और वास्तविक जीवन में प्रयोग से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं।

IV. पुनः निर्देशन (Redirection) :— इस तकनीक का प्रयोग करने की आवश्यकता तब पड़ती है जब छात्र उत्तर न दे सके या उसका उत्तर अपने में पूर्ण न हो। एक ही प्रश्न कई छात्रों से पूछा जाता है। इस प्रविधि का प्रयोग खोज पूर्ण उत्तर प्राप्त करने के लिये किया जाता है और कभी-कभी अधिक सूचना प्राप्ति के लिये भी किया जाता है।

V. आलोचनात्मक सजगता में वृद्धि (Increasing Critical Awareness) :— प्रश्न का उत्तर बिल्कुल सही मिलने पर उस प्रविधि का प्रयोग करते हैं। इसका ध्येय विषय से सम्बन्धित आलोचनात्मक सजगता एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करना होता है। इसमें निम्न प्रकार के प्रश्न पूछने चाहिएं–

1. आप ने यह किस आधार पर कहा ?
2. आप की ऐसी सोच क्यों है ?
3. यह कैसे सम्भव हो सकता है ?
4. आप मर्यादा में रहना क्यों पसन्द करते हैं ?
5. इस घटना के पीछे कौन-कौन से मुख्य कारण हो सकते हैं ?

खोजपूर्ण-प्रश्न-कौशल की अवलोकन सूची
(Observation Schedule for the skill of probing Questions)

छात्र अध्यापक का नाम — दिनांक

अनुक्रमांक — कक्षा

प्रकरण — अवधि: 8 मिनट

निरीक्षक — सत्र

खोजपूर्ण प्रश्न कौशल की सूची निम्न ढंग से होती है। मूल्यांकन 7 बिन्दुओं के स्केल पर किया जाता है।

0 = अत्यन्त निकृष्ट
1 = निकृष्ट
2= निम्न
3 = औसत
4 = उत्तम
5 = अति उत्तम
6 = उत्कृष्ट

Scanned by CamScanner

टैलियां	घटक	रेटिंग
	1. शिक्षक द्वारा अनुबोधन प्रश्न	0 1 2 3 4 5 6
	2. शिक्षक द्वारा अधिक सूचना प्राप्ति हेतु प्रश्न	0 1 2 3 4 5 6
	3. शिक्षक द्वारा पुनः केन्द्रीयकरण प्रश्न	0 1 2 3 4 5 6
	4. शिक्षक द्वारा पुनः निर्देशित प्रश्न	0 1 2 3 4 5 6
	5. शिक्षक द्वारा आलोचनात्मक सजगता वृद्धि हेतु, प्रश्न	0 1 2 3 4 5 6

खोजपूर्ण प्रश्न कौशल (आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना)

विषय – हिन्दी (निबन्ध) कक्षा – छटी

प्रकरण – राष्ट्र ध्वज समय – 6 मिनट

भावी शिक्षक कथन	छात्र कथन	घटक
1. हमारे देश में कौन–कौन से राष्ट्रीय पर्व मनाये जाते हैं ?	मौन रहते हैं।	
2. सोहन, तुम बताओ हमारा देश कब स्वतन्त्र हुआ था?	15 अगस्त, 1947 में	संकेत हेतु
3. 15 अगस्त के दिन कौन सा पर्व मनाया जाता है ?	स्वतन्त्रता पर्व (दिवस)	अधिक सूचना प्राप्ति हेतु
4. इस पर्व को कैसे मनाया जाता है ?	छात्र चुप रहते हैं।	
5. राष्ट्रीय चिन्ह कौन–कौन से हैं ?	राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा, पक्षी मोर, कमल का फूल जानवर चीता	संकेत
6. राष्ट्रीय ध्वज हमें किस बात की याद दिलाता है?	स्वतन्त्रता की	अधिक सूचना
7. राष्ट्रीय ध्वज में कितने रंग की पट्टियां हैं ?	तीन रंग की पट्टियाँ हैं।	पुनः केन्द्रीयकरण हेतु

Scanned by CamScanner

8. ये तीन रंग कौन-कौन से हैं ?	केसरिया, सफेद और हरा	पुनः केन्द्रीयकरण
9. केसरियां रंग किस गुण का प्रतीक है ?	त्याग एवं वीरता का प्रतीक है।	पुनः प्रेषण हेतु
10. सफेद रंग किस का प्रतीक है ?	शान्ति का प्रतीक है।	पुनः प्रेषण
11. हरा रंग किस बात का प्रतीक है ?	खुशहाली एवं समृद्धि का प्रतीक है।	पुनः प्रेषण
12. सफेद रंग की पट्टी के बीच में क्या बना हुआ है?	चक्र बना हुआ है।	अधिक सूचना
13. यह चक्र कहां से लिया गया है ?	सम्राट अशोक महान के सार नाथ स्तम्भ से	आलोचनात्मक सजगता हेतु
14. अशोक चक्र में कितनी तीलियां है ?	चौबीस तीलियां हैं।	अधिक सूचना
15. ये तीलियां किस तथ्य की प्रतीक हैं ?	दिन के 24 घन्टों की प्रतीक हैं।	आलोचनात्मक सजगता
16. यह चक्र हमें क्या प्रेरणा देता है ?	निरन्तर 24 घन्टे कार्य करने की प्रेरणा देता है।	आलोचनात्मक सजगता

उदाहरण कौशल

इस कौशल से पहले हम प्रश्न कौशल के महत्त्व की चर्चा परम्परागत एवं आधुनिक सामान्य शिक्षण की दृष्टि से कर चुके हैं। सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से भी हमने प्रश्न कौशल को शिक्षण का मुख्य आधार माना है। लेकिन सम्पूर्ण शिक्षण की पद्धति की सफलता के लिये केवल मात्र प्रश्न कौशल ही पर्याप्त नहीं बल्कि इस शिक्षण कौशल के अभ्यास के साथ-साथ उदाहरण कौशल का अभ्यास भी अत्यन्त आवश्यक है।

यह कहना ठीक है कि 'प्रश्न कौशल' शिक्षण का महत्त्वपूर्ण साधन है। प्रश्नों के प्रयोग से पाठ-शिक्षण सरलतर हो जाता है। परन्तु कभी-कभी पाठ के महत्त्वपूर्ण तथ्य, नवीन तथ्य और कठिन भाव एवं विचार न तो प्रश्नों द्वारा ही स्पष्ट होते हैं और न ही शिक्षक के कथन द्वारा ही। क्योंकि शिक्षक जो बात कहता है उसे मानने का छात्रों के पास

Scanned by CamScanner

कोई प्रमाण नहीं होता। यदि उसी बात की पुष्टि स्वरूप कोई ऐसी बात कही जाये जो उसी बात का समर्थन करती है अथवा उसे स्पष्ट करने के लिये कही जाती है तो छात्र शीघ्र ही समझ लेते हैं। इसी बात को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यदि किसी बात को समझने के लिये छात्रों को उचित उदाहरण दिये जाएं तो वे उस बात को सरलता एवं शीघ्रता से समझ लेते हैं। उदाहरणस्वरूप इसे इस प्रकार समझिये मान लीजिये शिक्षक छात्रों को यह बताना चाहता है कि वर्णमाला के प्रत्येक वर्ग का अन्तिम अक्षर अनुस्वार का काम करता है तो सम्भवत: छात्र इस बात को न समझ सकें, परन्तु जब इसकी पुष्टि हेतु शिक्षक बतायेगा कि 'अंक' का शुद्ध रूप 'अङ्क' है और 'कुंज' का 'कुञ्ज' होगा छात्र इसको सरलता से समझ लेंगे। इस प्रकार शिक्षण करते समय उदाहरणों की आवश्यकता समय-समय पर पड़ती है। यदि हम यह कहें कि उदाहरण के बिना सफल शिक्षण सम्भव नहीं है तो कोई अतिश्येक्ति नहीं होगी।

इस बात में कोई दो मत नहीं हो सकते कि शिक्षण के उपकरणों में उदाहरण महत्त्वपूर्ण उपकरण है। उदाहरण का अर्थ है प्रकाश डालना और शिक्षण में उदाहरण का तात्पर्य छात्रों को ज्ञान का स्पष्टीकरण कराने तथा भावों एवं विचारों को आत्मसात् कराने से है। कुछ विद्वानों के अनुसार उदाहरण शिक्षण की आत्मा है। पिन्सेट (Pinset) महोदय के अनुसार "अच्छे उदाहरण दुर्बोध कथन को सजीव तथा सरल बना देते हैं" (Good illustrations will make intellectually dead presentations come to life) ये रूचि को जागृत करते हैं तथा पाठ्य वस्तु को स्पष्ट करके मनोरंजक और समझने योग्य बना देते हैं। क्योंकि ये इन्द्रियों को सम्बोधित करते हैं, इस लिये चिन्तन को सही मार्ग पर ले जाते हैं। प्राय: कई बार छात्रों को शिक्षक के कथन को समझने में कठिनाई होती है क्योंकि जो शिक्षक के लिये सरल है वो बालकों के लिये कठिन हो सकता है। ऐसे अवसर पर उदाहरण देकर अज्ञात का ज्ञात से सम्बन्ध जोड़ कर अज्ञात को प्रकाशित किया जाता है। इनके प्रयोग से पाठ के प्रत्येक तथ्य को स्पष्ट किया जाता है और बालक उन्हें समझकर ग्रहण कर लेते हैं। मानसिक विकास की कमी के कारण जो छात्र सूक्ष्म बातों को समझने में असमर्थ होते हैं, उन्हें सूक्ष्म बातों का ज्ञान कराने के लिये उदाहरण अथवा मूर्त पदार्थों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। इनकी सहायता से सूक्ष्म बातें समझ में आ जाती हैं। जितनी अच्छी तरह से उदाहरणों का प्रयोग किया जाता है उतनी ही सफलतापूर्वक शिक्षण कार्य सम्भव होगा।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी शब्दों के पहले वस्तुओं का प्रयोग उत्तम समझा गया है। स्थूल वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के बाद छात्र सूक्ष्म बातों को शीघ्र समझ लेता है। इसके विपरीत यदि उसे स्थूल वस्तु का ज्ञान न हुआ तो उसकी कल्पना शक्ति का विकास न होगा और वह सूक्ष्म को न समझ सकेगा। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदाहरण बालक की कल्पना तथा विचार शक्ति को उभार कर उसके मानसिक विकास में

योग देते हैं। छोटे बालकों के लिये उदाहरणों का प्रयोग बहुत लाभदायक है। ये पाठ में रोचकता उत्पन्न करके बालकों का ध्यान पाठ की ओर आकर्षित करते हैं। इनके प्रयोग से बालकों की निरीक्षण शक्ति तथा स्मरण शक्ति का भी विकास होता है। विवरण, वर्णन, व्याख्या और निर्देशन सभी में इनका प्रयोग होता है।

उदाहरणों के उद्देश्य

जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उदाहरणों का प्रयोग किया जाता है, वे निम्न हैं –

1. पाठ के विकास करने हेतु।
2. पाठ में आई हुई कठिनाईयों को दूर करना।
3. पाठ में निहित ज्ञान को छात्रों तक पहुंचाना।
4. छात्रों के सामने किसी घटना का चित्र प्रस्तुत करना।

उदाहरणों के प्रकार

उदाहरण दो प्रकार के हैं।

1. मौखिक उदाहरण,
2. प्रदर्शित किये जाने वाले उदाहरण।

मौखिक उदाहरण वे हैं जो मुंह से कहे जायें और प्रदर्शित करने वाले उदाहरण वे हैं जिन्हें बालकों को दिखाया जाये, जैसे चित्र, नमूना आदि। परन्तु चित्र, नमूना आदि दृश्य सामग्री के अन्तर्गत आते हैं इस लिये इनका वर्णन दृश्य-श्रव्य सामग्री वर्णन के साथ किया जायेगा, यहां केवल मौखिक उदाहरणों का उल्लेख करेंगे।

मौखिक उदाहरण कई प्रकार के हो सकते हैं लेकिन उनमें से जो प्रमुख हैं, वे इस प्रकार हैं –

(I) लघुकथा :– कभी कभी बालक पाठ के कुछ अंशों का शब्दार्थ तो समझ लेते हैं लेकिन वे उसकी गहनता को नहीं समझ पाते। ऐसे स्थलों को स्पष्ट करने के लिये अनुभवी शिक्षक लघु कथाओं का प्रयोग करते आये हैं। उदाहरण के लिये, 'सत्य' शब्द को छात्र सरलता से समझ लेते हैं लेकिन यदि उन्हें यह पता न हो कि सत्य बोलने के क्या परिणाम होते हैं, तो छात्र उसे आचरण में नहीं ढाल पाते। इस हेतु कुशल शिक्षक छात्रों को सत्यवादी लोगों (महान पुरूषों) की छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाकर उसे पूर्ण रूप से समझा देता है। इस प्रकार बहुत सी अन्य बातों को भी स्पष्ट किया जा सकता है।

(II) उपमा :– उपमाओं का प्रयोग किसी अज्ञात वस्तु की समानता ज्ञात वस्तु से करने के लिये किया जाता है। बहुत सी वस्तुओं और क्रियाओं को अन्य कुछ ऐसी वस्तुओं और क्रियाओं द्वारा, जिन्हें बालक भली-भांति समझते हैं, सरलता से समझाया जा सकता है। उपमाओं का उदाहरण देने में शिक्षकों को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना

Scanned by CamScanner

सक।

उदाहरण कौशल के घटक

उदाहरण कौशल में दो प्रक्रियायें निहित हैं।

(I) छात्रों को किसी विचार अथवा सिद्धान्त को स्पष्ट करना।

(II) इस बात की परिपुष्टि करना कि छात्रों ने उस विचार अथवा सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लिया है या नहीं।

जहां तक उदाहरण कौशल के घटकों का सम्बन्ध है वे निम्न हैं :

1. सम्बन्धित उदाहरणों का प्रयोग :– शिक्षक को उदाहरण का सम्बन्ध उपविषय से जोड़ना चाहिये। अगर उदाहरण का सम्बन्ध उपविषय से नहीं होगा तो उसको कोई लाभ नहीं है। सम्बन्धित उदाहरण ऐसे उदाहरण को कहते हैं जो व्याख्याधीन विचार अथवा सिद्धान्त को उचित रूप से समझने में सहायक हो।

2. सरल उदाहरणों का प्रयोग :– उदाहरण सरल होने चाहियें। सरल उदाहरण ऐसे उदाहरणों को कहते हैं जो छात्रों के पूर्वज्ञान और पूर्व अनुभवों पर आधारित होते हैं। शिक्षक को किसी विचार को स्पष्ट करने के लिये छात्रों के पूर्वज्ञान से उदाहरण देने का प्रयास करना चाहिये। शिक्षक सरल उदाहरणों का प्रयोग करता है या नहीं इस बात का निर्णय निम्न दो बातों से किया जा सकता है :–

(I) छात्र के भाग लेने का स्तर और उनके द्वारा दिये गये उत्तरों में शुद्धता।

(II) छात्रों का स्पष्ट बोध। इनके स्पष्ट बोध का ज्ञान तभी होता है जब वे व्याख्याधीन विषय के सम्बन्ध से स्वयं उदाहरण देने लगते हैं।

3. रोचक उदाहरणों का प्रयोग :– शिक्षक को रोचक उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये। रोचक उदाहरण ऐसे उदाहरण को कहते हैं जो छात्रों के मन में व्याख्याधीन विषय के सम्बन्ध में रोचकता एवं जिज्ञासा उत्पन्न करे और उदाहरण छात्रों के अनुभवों और उनके

Scanned by CamScanner

मानसिक स्तर के अनुकूल हों। शिक्षक रोचक उदाहरणों का प्रयोग कर रहा है या नहीं इस बात का पता छात्रों की एकाग्रता, रूचि, उत्साह एवं जिज्ञासा से पता चल सकता है।

4. उदाहरणों के लिये उचित माध्यमों का प्रयोग :– उदाहरणों के लिये उचित माध्यमों का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। ये माध्यम दो प्रकार के हैं– I. अशाब्दिक और II. शाब्दिक

Scanned by CamScanner

उदाहरण कौशल की आदर्श सूक्ष्म पाठ योजना

कक्षा - सातवीं

अवधि - 8 मिनट

विषय - हिन्दी (व्याकरण)

उपविषय-विशेषण के भेद

अध्यापक कथन एवं क्रियाएं	छात्र कथन एवं क्रियाएं
1. छात्रो कल तुमने विशेषण के बारे में पढ़ा था। विशेषण के कुछ उदाहरण दो।	सफेद, बहादुर, ईमानदार परिश्रमी ये सभी विशेषण हैं।
2. शिक्षक छात्रों द्वारा दिये गये उदाहरणों को चाकबोर्ड पर लिखता है और पूछता है मोटा, झूठा, पापी शब्द व्याकरण की दृष्टि से क्या हैं ?	विशेषण, व्यक्ति के अवगुण

Scanned by CamScanner

3. ये पहले वाले शब्द क्या थे जैसे कि तुमने बताया था सफेद, बहादुर, ईमानदार और परिश्रमी ।	व्यक्ति (संज्ञा) के गुण, विशेषण
4. बताईये विशेषण किसे कहते हैं ?	जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम के गुण अथवा अवगुण बताये उसे विशेषण कहते हैं।
5. विशेषण के कितने भेद हैं ?	प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता
6. विशेषण के चार भेद हैं और शिक्षक इनको चाक बोर्ड पर भी लिखता है – गुण वाचक, संख्यावाचक, परिमाण वाचक और संकेत वाचक व सार्वनामिक विशेषण ।	
7. गुण वाचक के विषय में तुम जान चुके हो और बाकी तीन के बारे में मैं आपको जानकारी देता हूँ। संख्या वाचक विशेषण संख्या का बोध कराते हैं जैसे कक्षा में 40 छात्र हैं, मोहन के पास पांच पैन हैं।	
8. संख्या वाचक का तुम कोई उदाहरण दो।	एक छात्र कहता मैदान में दस विद्यार्थी खेल रहे हैं।
9. विद्यार्थियो, संख्या वाचक के भी दो भेद हैं। निश्चित संख्या वाचक और अनिश्चित संख्या वाचक ।	
10. निश्चित संख्या वाचक विशेषण के बारे में हमने अभी पढ़ा है 40 छात्र, 5 पैन और 10 विद्यार्थी। इससे निश्चित संख्या का बोध होता है। अब आप बताओ अनिश्चित संख्या वाचक किसे कहते हैं ?	एक छात्र कहता है कि कुछ छात्र, दूसरा कहता है कुछ किताबें ।
11. परिमाण वाचक किसे कहते हैं ? उदादरण देकर बताओ ।	जिससे नाप तोल का पता चले जैसे कप में कुछ चाय है।
12. संख्या वाचक की तरह परिमाण वाचक के भी दो भेद हैं। आप बताओ वे कौन-कौन से हैं ?	एक होशियार छात्र कहता है निश्चित परिमाण वाचक और अनिश्चित परिमाण वाचक ।
13. निश्चित परिमाण वाचक किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित बताओ।	एक छात्र कहता है दो मीटर कपड़ा और एक अन्य छात्र कहता है गिलास में कुछ दूध है।
14. शिक्षक ने कहा कि निश्चित रूप से बताओ।	छात्र कहता 200 ग्राम दूध है।
15. अब आप बताओ संकेत वाचक या सार्वनामिक विशेषण क्या होता हैं ?	एक छात्र ने उत्तर दिया वो काली गाय।

व्याख्या कौशल

शिक्षण प्रक्रिया का रूप चाहे परम्परागत हो या आधुनिक हो, उसमें व्याख्या कौशल के महत्त्व को झुठलाया नहीं जा सकता। सफल शिक्षण के लिये पाठ का विकास करना अत्यन्त आवश्यक होता है और पाठ के विकास के लिये व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। इस लिये शिक्षक की व्याख्या कौशल में दक्षता होनी चाहिये। परम्परागत शिक्षण के अन्तर्गत व्याख्या कौशल न कह कर इस तकनीक (उपकरण) को व्याख्या विधि कहते थे। पाठ्य वस्तु के स्पष्टीकरण हेतु इसे मौखिक साधन भी कहा जाता है। सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत इसे अलग से शिक्षण कौशल का नाम दिया गया है और इस कौशल में दक्षता हेतु अभ्यास करने का अवसर दिया जाता है। व्याख्या कौशल का शिक्षण प्रक्रिया में उतना ही महत्त्व है जितना के प्रश्न कौशल और उदाहरण कौशल का जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। इस व्याख्या कौशल का सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से महत्त्व और इस शिक्षण कौशल के अभ्यास के जानने से पूर्व यह जानने का प्रयास करेंगे कि इसकी परम्परागत सामान्य शिक्षण में क्या स्थान है–

प्रभावपूर्ण एवं सशक्त शिक्षण में प्रश्न करने और बताने के बीच सन्तुलन होना चाहिये अर्थात् न अधिक प्रश्न किये जायें और न ही अधिक बतालाया ही जाये। गणित, विज्ञान तथा व्याकरण के पाठों में शिक्षक को अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी के साहित्य, इतिहास और वर्णनात्मक भूगोल के पाठों में पड़ती है अर्थात् इन पाठों में व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। इन विषय के पाठों में प्रश्न कम करने चाहियें और व्याख्या अधिक करनी चाहिये।

व्याख्या का अर्थ

व्याख्या का तात्पर्य अर्थ बताने अथवा किसी पूर्वज्ञान तथा अनुभव की ओर संकेत करके नये ज्ञान अथवा वस्तु या सूचना को समझाने योग्य बना देने से है। दूसरे शब्दों में व्याख्या का अर्थ पाठ की गुत्थी को सुलझाने और उसके भावों को अलग-अलग करके सरल रूप में बालकों के सम्मुख रखने से है, जिससे बालकों को समझने में कोई कठिनाई न हो और उनका अधिक से अधिक ज्ञानार्जन हो। स्पष्ट है कि कठिन शब्द, वाक्य और

Scanned by CamScanner

प्रसंग को समझाना व्याख्या कहलाता है। व्याख्या द्वारा छात्रों को पाठ के भाव ग्रहण करने का अवसर दिया जाता है। व्याख्या करने की क्षमता ऐसे शिक्षक में ही होगी जिसका भाषा पर अधिकार हो, जिसका ज्ञान और अनुभव अधिक हो। पाठ्य विषय का भी सम्पूर्ण ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इस मौखिक साधन का अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने हेतु शिक्षक को निम्न सावधानियों को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये।

(I) व्याख्या शुद्ध ठीक-ठीक तथा स्पष्ट होनी चाहिये क्योंकि अस्पष्ट निरर्थक एवं अशुद्ध व्याख्या द्वारा विद्यार्थी पाठ के भावों को ग्रहण न कर सकेंगे। व्याख्या की स्पष्टता विचारों अथवा भावों को क्रम बद्ध करने की क्रिया पर निर्भर करती है। यदि शिक्षक पाठ को क्रम बद्ध कर ले तो वह उन्हें स्पष्ट रूप से कक्षा के समक्ष प्रस्तुत करता है। यह सम्भव है कि जो व्याख्या शिक्षक के लिये स्पष्ट हो वह बालकों के लिये कठिन हो। अत: बालकों के मानसिक स्तर, अवस्था और चिन्तन शक्ति को ध्यान में रखकर करनी चाहिये।

(II) व्याख्या लम्बी नहीं होनी चाहिये। लम्बी व्याख्या में समय अधिक लगता है और छात्र सुनते सुनते उबने लगते हैं।

(III) व्याख्या सरल तथा शुद्ध भाषा में होनी चाहिये। यदि व्याख्या की भाषा कठिन और जटिल होगी तो छात्र उसे न समझ सकेंगे। इस प्रकार व्याख्या का उद्देश्य निरर्थक हो जायेगा।

(IV) व्याख्या करने से पूर्व छात्रों का उन वस्तुओं के अवलोकन एवं प्रयोग का अवसर मिलना चाहिये, जिनकी व्याख्या करनी है अर्थात् व्याख्या छात्रों के अनुभवों से सम्बन्धित होनी चाहिये।

(V) व्याख्या को रोचक, सजीव एवं प्रयोजन पूर्ण बनाने के लिये शिक्षक को उदाहरणों तथा दृष्यन्त का खुलकर प्रयोग करना चाहिये।

(VI) व्याख्या के बीच-बीच में प्रश्न करने अथवा प्रश्न पूछने के अवसर देने चाहियें। व्याख्या की समाप्ति के बाद शिक्षक को प्रश्न अवश्य पूछने चाहियें जिससे कि यह पता चल सके कि बालकों ने व्याख्या समझ ली है अथवा नहीं। जो बात समझ न आये उसे फिर समझा दी जानी चाहिये।

(VII) व्याख्या उसी समय करनी चाहिये जब उसकी आवश्यकता हो, छात्र उसके लिये उत्सुक हों और उनका ध्यान पाठ में केन्द्रित हो। बिना आवश्यकता के व्याख्या करना बहुत बड़ी भूल है।

(VIII) व्याख्या करने से पहले शिक्षक को अपने सब भ्रम दूर कर लेने चाहियें जिससे व्याख्या करते समय किसी प्रकार की कोई बाधा न आये।

(IX) व्याख्या में उपदेश का पुट नहीं होना चाहिये । कोरे उपदेश छात्रों को अच्छे नहीं लगते। व्याख्या का प्रयोग साध्य रूप में न होकर साधन रूप में होना चाहिये। अगर व्याख्या साध्य रूप में होगी तो पाठ्य वस्तु पढ़ाने का प्रयोजन ही समाप्त हो जायेगा।

(X) छोटी कक्षाओं में व्याख्या कम और निम्न स्तर की हो और उच्च कक्षाओं में व्याख्या का स्तर उच्च हो और व्याख्या अधिक होनी चाहिये।

(XI) भाषा की शिक्षा में व्याख्या की भूमिका अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण होती है। किसी शब्द, वाक्य, भाव, विचार एवं शैली को स्पष्ट करने के लिये व्याख्या की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। तुलना, समानता, असमानता और विचार विश्लेषण द्वारा पाठ्य-वस्तु को बोधगम्य बनाया जा सकता है।

(XII) साहित्य की अनेक विधाओं जैसे-कविता, गद्य, नाटक, कहानी में अर्न्तकथा, उपमा आदि का प्रसंगानुकूल उल्लेख करके कठिन भावों एवं विचारों को सरल किया जा सकता है।

इन विधियों के अतिरिक्त भाषा-शिक्षण में व्याख्या करने की और कई विधियां हैं जिनका संक्षेप में परिचय निम्न है –

1. स्पष्टीकरण द्वारा- कठिन शब्दों एवं विचारों का विश्लेषण करके सरल भाषा में छात्रों को समझाना।
2. परिभाषा द्वारा- कठिन शब्दों अथवा दो शब्दों के अन्तर को परिभाषा द्वारा स्पष्ट करना।
3. पर्याय द्वारा- कठिन शब्द के लिये दूसरा सरल शब्द बताना जो उसका पर्यायवाची हो।
4. वस्तु दिखाकर- जो कठिन शब्द मूर्तमान वस्तु के प्रतीक हो उसके अर्थ के समझाने के हेतु वस्तु का दिखाना।
5. अभिनय द्वारा- यदि कठिन शब्द क्रियार्थक हों तो अभिनय करके उनकी व्याख्या करना।
6. विग्रह द्वारा- शब्दों के समास तोड़कर, विग्रह करके उसके अर्थ समझाना।
7. व्युत्पत्ति द्वारा- शब्दों की उत्पत्ति बताकर उन्हें बोधगम्य बनाना।
8. संधि विश्लेषण द्वारा- कठिन शब्दों की संधि तोड़कर उन्हें सरल करके उनके अर्थ समझाना।

व्याख्या करने की योग्यता भिन्न-भिन्न शिक्षकों में भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है। यद्यपि यह सत्य है कि प्रत्येक शिक्षक एक श्रेष्ठ व्याख्याकर्त्ता नहीं बन सकता। लेकिन आज के आधुनिक युग में सूक्ष्म शिक्षण के अन्तर्गत व्याख्या को शिक्षण कौशल के रूप में मानकर अभ्यास द्वारा भावी शिक्षक को कुशल व्याख्याकर्त्ता बनाना सम्भव है।

Scanned by CamScanner

सूक्ष्म शिक्षण की दृष्टि से व्याख्या कौशल

व्याख्या कौशल शिक्षण प्रक्रिया को सफल बनाने वाले महत्त्वपूर्ण कौशलों में से एक है। पाठ्य-वस्तु को सरल बनाने के लिये यह सर्वोत्तम कौशल है। कुशलता पूर्वक कठिन शब्दों वाक्यों और प्रसंगों की व्याख्या करने का गुण प्रत्येक शिक्षक में होना चाहिये। क्योंकि छात्र कम अनुभवी अपरिपक्व बुद्धि के होते हैं। शिक्षक विभिन्न कठिन एवं गूढ विषयों का ज्ञान छात्रों को प्रदान करने के लिये वह अपने विस्तृत ज्ञान और अनुभवों का प्रयोग करता है। विषय को सरल और छात्रों के लिये ग्रहण योग्य बनाने के लिये शिक्षक जिस कौशल का प्रयोग करता है उसे 'व्याख्या कौशल' कहते हैं। जब विषय को पढ़ाते समय भावों, विचारों, संप्रत्ययों, सिद्धान्तों आदि की कठिनाई आ जाती है तो छात्रों को समझाने के लिये व्याख्या कौशल पर निर्भर रहना पड़ता है।

जब पाठ्य वस्तु के किसी तथ्य, सिद्धान्त और संप्रत्यय के 'क्या' 'क्यों' 'कैसे' को छात्रों को समझाना होता है तब इसे समझाते समय शिक्षक जो व्यवहार करता है वो व्याख्या कौशल से सम्बन्धित होता है। व्याख्या के द्वारा शिक्षक छात्रों के पूर्वज्ञान से नये ज्ञान को इस प्रकार जोड़ता है कि नया ज्ञान छात्रों को स्पष्ट हो जाता है। व्याख्या का प्रयोग अकसर किसी घटना, क्रिया, परिणाम, स्थिति या कार्य विधि को स्पष्ट करने के लिये किया जाता है। इसके लिये शिक्षक कई तकनीकियों का सहारा लेता है जैसे- भाषान्तर करना, परिभाषा देना, अभिनय या क्रियात्मक शब्दों का प्रयोग करना, सरल भाषा में विश्लेषण करना पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना, सार्थक दृश्य सामग्री का प्रयोग करना आदि।

'व्याख्या' अनिवार्यतः एक शाब्दिक कौशल है जिसके दो मुख्य तत्त्व हैं।

1. उचित कथनों का चयन
2. चुने हुए कथनों में अर्न्तसम्बन्ध एवं उनका प्रयोग

सामान्य रूप से जब कथनों का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि कथन तीन प्रकार के होते हैं।

(1) वर्णनात्मक

(2) अर्थ-निरूपण

(3) तर्क-निरूपण

'क्या' 'क्यों' और 'कैसे' को स्पष्ट करने हेतु तर्क-निरूपण की आवश्यकता पड़ती है। व्याख्या को प्रभावशाली और सार्थक बनाने हेतु शिक्षक को वांछनीय व्यवहार पर बल देना चाहिये और अवांछनीय व्यवहार की उपेक्षा करनी चाहिये।

व्याख्या कौशल के घटक

किसी भी काठिन्य की व्याख्या करने के लिये अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में वांछित एवं अवांछित दोनों प्रकार के व्यवहारों का समावेश होता है। जहां वांछित व्यवहारों की आवृत्ति उचित होती है वहीं अवांछित व्यवहार अनुचित होता है और उससे बचने का प्रयास किया जाता है।

(क) वांछित व्यवहार।

(I) उपयुक्त प्रारम्भिक कथनों का प्रयोग।

(II) निष्कर्षात्मक कथन स्पष्ट करना।

(III) भाषा में प्रवाह होना।

(IV) उपयुक्त शब्दों का प्रयोग।

(V) कथनों में तारतम्य होना।

(VI) कथनों को आपस में जोड़ने वाले शब्दों अथवा मुहावरों का प्रयोग।

(VII) प्रश्न पूछना।

(ख) अवांछनीय व्यवहार।

(I) असम्बन्धित कथन।

(II) कथनों में तारतम्य का अभाव।

(III) प्रवाहशीलता का अभाव।

(IV) अस्पष्ट शब्द अथवा मुहावरे।

निरीक्षण अनुसूचि युक्त रेटिंग का प्रारूप

टैलियां	व्यवहार घटक	रेटिंग स्केल
हां/नहीं	1. उपयुक्त प्रारम्भिक कथनों का प्रयोग किया गया	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	2. निष्कर्षात्मक कथन स्पष्ट किये गये	0 1 2 3 4 5 6
	3. भाषा में प्रवाह	0 1 2 3 4 5 6
हां/नहीं	4. उपयुक्त शब्दों का प्रयोग	0 1 2 3 4 5 6
	5. कथनों में निरन्तरता रखी गई	0 1 2 3 4 5 6
	6. कथनों में तारतम्य होना	0 1 2 3 4 5 6
	7. बीच बीच में प्रश्न पूछना	0 1 2 3 4 5 6

Scanned by CamScanner

कविता शिक्षण के उद्देश्य तथा शिक्षण विधियाँ

व्यवहारगत उद्देश्य

इस कैप्सूल का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

1. कविता शिक्षण के महत्त्व एवं उपयोगिता को बता सकेंगे।
2. कविता शिक्षण के उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर उन्हें अपने शिक्षण कार्य का आधार बना सकेंगे।
3. कविता के सौन्दर्य तत्त्वों की विशेषताएं बता सकेंगे।
4. कविता शिक्षण के अंगों को समझ कर अपने शिक्षण में उनका समुचित रूप में उपयोग कर सकेंगे।
5. कविता की प्रकृति के अनुकूल कविता शिक्षण की विधियों का कक्षा-शिक्षण में प्रयोग कर सकेंगे।
6. कविता में रुचि उत्पन्न करने के उपाय अपना सकेंगे।

12.1.1 कविता शिक्षण का महत्त्व एवं उपयोगिता

भाषा शिक्षण में कविता शिक्षण का विशेष महत्त्व है। इसके अध्ययन से विद्यार्थियों को भावात्मक संतुष्टि मिलती है। उनकी सौन्दर्यानुभूति तथा कल्पना शक्ति में वृद्धि होती है और सद्वृत्तियों का विकास होता है।

कविता सीधे हृदय को स्पर्श करती है। इस दृष्टि से अध्यापक को-कविता के माध्यम से विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करने में सहायता मिलती है।

कविता सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् तीनों गुणों से युक्त होने के कारण आनन्द का प्रमुख माध्यम है। अतः कविता शिक्षण के समय अध्यापक विद्यार्थियों को कविता विशेष के अर्थ बोध पर बल न देकर उसके भाव-सौन्दर्य की ओर भी विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करें। सौन्दर्यानुभूति की यही भावना विकसित होकर विद्यार्थियों के कार्यों तथा विचारों को प्रभावित करती है और उन्हें जीवन तथा संसार में सौन्दर्य का दर्शन कराती है। वे उस सौन्दर्य को अपने जीवन में आत्मसात कर लेते हैं।

कविता शिक्षण से विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति का विकास होता है। वह भी कवि की भावनाओं से तादात्मय स्थापित कर जीवन की कटुताओं एवं कुरूपताओं से दूर कल्पना के सुन्दर एवं सुनहरे लोक में विचरण करने लगते हैं। इससे उनमें मौलिकता तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है।

भाषा शिक्षण, की दृष्टि से भी कविता शिक्षण का बहुत महत्त्व है। कविता शिक्षण से विद्यार्थी को भाषा के विविध रूपों और अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों का ज्ञान प्राप्त होता है। वही ज्ञान उसे अपनी विशेष रचना-शैली विकसित करने में भी सहायता देता है।

अभ्यास कार्य
❑ कविता शिक्षण से विद्यार्थियों की भावनाओं का परिष्कार किस प्रकार संभव है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

निर्देश

चर्चा कीजिए

12.1.2 कविता शिक्षण के उद्देश्य

कविता शिक्षण के उद्देश्य कक्षा स्तरानुसार भिन्न-भिन्न होंगे। प्रस्तुत विवेचना में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं को ध्यान में रखकर कविता शिक्षण से निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की अपेक्षा की जाती है।

प्राथमिक स्तर

प्राथमिक स्तर पर कविता शिक्षण का प्रारंभ कक्षा तीन से किया जाना चाहिए। इससे पूर्व की दो कक्षाओं में छोटे-छोटे

Scanned by CamScanner

बाल गीतों का कण्ठस्थीकरण गेयता के साथ कराने एवं कक्षा में उन्हें वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप में सुनवाने तक ही सीमित रखना चाहिए।

कक्षा तीन से पाँच के विद्यार्थियों के लिए कविता शिक्षण के उद्देश्यों को इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है।

- शुद्धता, स्पष्टता, यति, गति, आरोह-अवरोह, लय, हाव-भाव और भाव के अनुसार कविता के सस्वर पठन की कुशलता।
- पठित कविता के अर्थ एवं भावों को सुनकर एवं पढ़कर ग्रहण करने की योग्यता।
- पठित कविता के अर्थ को मौखिक एवं लिखित रूप में अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने की योग्यता।
- पठित कविता या उसके अंशों को कण्ठस्थीकरण करने की योग्यता।
- पठित कविता के अंतर्गत भावों में रुचियों एवं वृत्तियों को परिष्कृत करने की योग्यता।

उच्च प्राथमिक स्तर

उच्च प्राथमिक स्तर पर उक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य जिन उद्देश्यों का समावेश युक्तियुक्त होगा वे इस प्रकार हैं :

- कविता के सस्वर पठन की कुशलता को और अधिक विकसित करने की योग्यता (विशेषतः लय, आरोह-अवरोह, हाव-भाव एवं भावानुकूल पठन के अवयवों के समावेश पर बल देते हुए)।
- पठित कविता के अर्थ एवं भावों के ग्रहण के साथ-साथ उनकी व्याख्या की योग्यता।
- पठित कविता में समभाव रखने वाली कविताओं के पठन एवं अभ्यास-पुस्तिकाओं में संकलन करने की योग्यता।
- कविता के भाव-सौन्दर्य एवं भाषिक सौन्दर्य का सामान्य परिचय देने की योग्यता।
- काव्य-पाठ प्रतियोगिताओं में भाग लेने की योग्यता।
- व्यक्तित्व के भावात्मक एवं मानसिक पक्ष का विकास करने की योग्यता।
- तुकान्त कविता लिखने की योग्यता।

सामान्यतः कविता शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों में उपर्युक्त योग्यताओं का विकास अपेक्षित है। पाठ विशेष के संदर्भ में विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है।

Scanned by CamScanner

12.1.4 कविता शिक्षण के अंग

कविता शिक्षण के महत्त्व, उद्देश्यों तथा सौन्दर्य तत्वों पर चर्चा करने के पश्चात् आइए अब कविता शिक्षण के अंगों पर चर्चा करें।

कविता के तीन प्रमुख अंग होते हैं— वाचन, व्याख्या, भाव-विश्लेषण एवं सौन्दर्यानुभूति।

1. वाचन : कविता शिक्षण में वाचन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कविता का सम्बन्ध कान से होता है, आँख से नहीं। अंग्रेजी भाषा के सुप्रसिद्ध प्राध्यापक हैडो ने कविता को "श्रवण की कला" कहा है। कविता का आनन्द सुनकर अधिक लिया जा सकता है। लययुक्त तथा छन्दबद्ध कविताओं का अध्यापक द्वारा उचित लय, ताल और गति से किया गया सस्वर वाचन विद्यार्थियों को अधिक आनन्द प्रदान कर सकता है। इसी प्रकार भावात्मक कविताओं को भावानुकूल स्वरों में पढ़कर भाव सौन्दर्य की अनुभूति कराई जा सकती है। कविता के सस्वर वाचन से कक्षा में काव्यमय वातावरण की सृष्टि होती है और यह काव्यमय वातावरण भावानुभूति में सहायक होता है।

कविता पाठ अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों द्वारा किया जाना चाहिए।

(क) अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ : अध्यापक द्वारा कविता के आदर्श पाठ को ही कविता शिक्षण का प्रथम सोपान माना जाता है। अध्यापक द्वारा कविता का आदर्श पाठ जितना भावानुरूप स्वर, उचित यति-गति तथा हाव-भाव से किया जाएगा, उसका भावार्थ विद्यार्थियों को उतनी ही सरलता से समझ में आएगा और उसकी रसानुभूति भी वे उतनी ही अधिक कर पाएंगे। अध्यापक द्वारा कविता पाठ न तो गाकर किया जाए और न ही उसमें गद्य जैसी नीरसता विद्यमान हो। वाचन करते समय स्वर में मधुरता होना अनिवार्य है। प्राथमिक कक्षाओं में कविता पाठ विशेषकर बाल गीतों तथा दोहों का पाठ गाकर किंया जा सकता है परन्तु उच्च प्राथमिक कक्षाओं में वर्णनात्मक तथा सरल साहित्यिक कविताओं का वाचन भावानुकूल स्वर में किया जाना ही अपेक्षित है। कविता शिक्षण प्रक्रिया में कविता पाठ कम से कम तीन बार करना चाहिए। पहले आदर्श पाठ के द्वारा कविता के अर्थ ग्रहण करने के लिए वातावरण तैयार किया जाता है। दूसरे आदर्श पाठ से कविता के भाव-बोध में सहायता मिलती है। तीसरे आदर्श पाठ के द्वारा पूरी कविता या उसके पद्यांश की विद्यार्थियों के मनोमस्तिष्क पर छाप छोड़ना है ताकि कविता पढ़ने के पश्चात् भी वे उसके आनन्द से विभोर रहें।

(ख) विद्यार्थियों द्वारा अनुकरण पाठ : कविता का अनुकरण पाठ दो प्रकार से करवाया जाता है—व्यक्तिगत तथा सामूहिक। व्यक्तिगत पठन में सम्पूर्ण पद्यांश का या कविता के कुछ अंशों, जैसे—दोहा, कवित्त आदि का तीन-चार विद्यार्थियों द्वारा अलग-अलग सस्वर वाचन करवाया जाता है। सामूहिक अनुकरण पाठ सम्पूर्ण कक्षा द्वारा समवेत स्वर में किया जाता है। इसमें पहले अध्यापक कविता की एक पंक्ति को मधुर स्वर में पढ़ता है तत्पश्चात् सभी विद्यार्थी उसे उसी स्वर में दोहराते हैं। प्राथमिक स्तर पर अनुकरण पाठ दोनों ही रूपों से कराया जा सकता है। बाल गीतों को पढ़ाने के लिए समवेत पाठ कराना उत्तम है क्योंकि इसमें बच्चों को अधिक आनन्द आता है। उच्च प्राथमिक तथा उसके आगे की कक्षाओं में कविता शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों में भाव पक्ष तथा कला पक्ष के सौन्दर्य की सराहना करने की क्षमता विकसित करना होता है। अतः उन स्तरों के विद्यार्थियों के लिए व्यक्तिगत अनुकरण विधि ही श्रेयस्कर है। व्यक्तिगत पाठ करते समय यदि कोई विद्यार्थी उच्चारण संबंधी भूल करता है तो उसे उस समय नहीं टोकना चाहिए क्योंकि इससे वह हतोत्साहित हो जाता है और उसे कविता पाठ में रस नहीं आ पाता। उच्चारण संबंधी भूलों का संशोधन आदर्श पाठ द्वारा अन्त में करना उचित है।

2. व्याख्या : प्राथमिक कक्षाओं के लिए चयन किए गए बाल गीत, तुकान्त पद्य और वर्णनात्मक कविताएं मुख्यतः लयपूर्वक गाने के लिए होती हैं। सामान्यतः इन कविताओं की शब्दावली सरल होती है परन्तु यदि कुछ कठिन या नए शब्द आएं तो

Scanned by CamScanner

उनके अर्थ वार्तालाप, अभिनय तथा उदाहरण के द्वारा बताए जा सकते हैं। प्रयास यह होना चाहिए कि वार्तालाप या प्रश्नोत्तर युक्ति से शब्दार्थ विद्यार्थियों द्वारा अभिव्यक्त हो जाएं। इनकी प्रत्येक पंक्ति की व्याख्या आवश्यक नहीं है। ऐसी कविताओं में जहाँ शब्द सौन्दर्य या भाव सौन्दर्य हो, उसी की ओर विद्यार्थियों का ध्यान दिलाया जाना चाहिए।

उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए चयन की गई कविताओं के विषय, भाव और भाषा अपेक्षाकृत गूढ़ होते हैं। अतः इस स्तर के विद्यार्थियों को कुछ स्थलों पर व्याख्या की आवश्यकता होती है परन्तु कविता शिक्षण का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति करवाना है। गद्य शिक्षण की भांति एक-एक शब्द की व्याख्या करके शब्द-भंडार वृद्धि करना नहीं इसलिए केवल जो उनके कठिन तथा अपरिचित शब्द कविता की रसानुभूति में बाधा बनते हों उनके अर्थों को सीधे ही स्पष्ट कर देना चाहिए। कविता पढ़ाते समय ब्रज और अवधी भाषा में आए शब्दों के खड़ी बोली के रूप भी बता देने चाहिएँ। इससे अर्थ बोध में सहायता मिलती है जैसे : लरका-लड़का, जोगी-योगी, मोरी-मेरी, सारी-साड़ी आदि। इसी प्रकार कविता में प्रसंगानुकूल आई धार्मिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक अंतर्कथाओं को भी संक्षेप में बता देना चाहिए। जहां कहीं प्रतीकात्मक (काले बादल—विपत्ति के लिए), लाक्षणिक (श्रवण कुमार—आज्ञाकारी तथा पितृ भक्त के लिए), अलंकारिक (चन्द्रमुखी—सुन्दर स्त्री के लिए) शब्द आएं, उनकी व्याख्या कविता पढ़ाते समय करनी चाहिए। इस प्रकार किया गया काठिन्य निवारण कविता के अर्थ ग्रहण तथा भावानुभूति में सहायक होता है।

3. भाव विश्लेषण एवं सौन्दर्यानुभूति : भाव विश्लेषण कविता शिक्षण का अंतिम सोपान होता है। कविता में कला पक्ष की अपेक्षा भाव पक्ष प्रधान माना जाता है। शिक्षक का दायित्व केवल कविता में आए कठिन शब्दों या नए प्रसंगों की व्याख्या तक ही सीमित नहीं है। उसे तो अपने विद्यार्थियों को रसानुभूति करने में सक्षम बनाना है। यह तभी संभव है जब वह अपने विद्यार्थियों को कविता में आए भाव, विचार, कल्पना और भाषा संबंधी सौन्दर्य तत्वों का बोध कराएं।

प्रथम दो कक्षाओं में भाव तथा विचार सौन्दर्य पर ही बल देना चाहिए क्योंकि इसमें कवि का संदेश तथा कविता का मूलभाव निहित होता है। भाव सौन्दर्य की अनुभूति कराने का सर्वोत्तम साधन कविता का सस्वर वाचन है। तीसरी कक्षा से आगे कविता के सस्वर वाचन के साथ समान भाव की अन्य सरल और गेय कविताओं का वाचन भी किया जाना चाहिए। इससे पढ़ाई जाने वाली कविता का केंद्रीय भाव अधिक स्पष्ट होता है और कविता के प्रति रुचि जागृत होती है। परन्तु उद्धृत की गई कविता अपेक्षाकृत सरल हो तथा विद्यार्थियों ने पहले पढ़ या सुन रखी हो।

उच्च प्राथमिक कक्षाओं को कविता पढ़ाते समय अध्यापक को मुख्य भावात्मक स्थलों को पहचान कर उन पर ऐसे उत्प्रेरक प्रश्न पूछने चाहिएँ जो कविता में अभिव्यक्त भाव तथा विचार सौन्दर्य को स्वयं समझने में उनकी सहायता करें।

माध्यमिक तथा उससे आगे वाली कक्षाओं में भाव-पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष (रस, अलंकार, छन्द, गुण, भाषा-शैली आदि सौन्दर्य तत्त्व) की अनुभूति भी करानी चाहिए। परन्तु कक्षा आठ तक के विद्यार्थियों को तो केवल सुर, लय एवं ताल से ही परिचित कराना पर्याप्त है। इन सौन्दर्य तत्त्वों के नामों को बताने की आवश्यकता नहीं है।

Scanned by CamScanner

12.1.5 कविता शिक्षण की विधियाँ

कविता शिक्षण की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। अध्यापक कविता पढ़ाते समय किस विधि को अपनाए यह कविता के प्रकार, विषय तथा कक्षा स्तर पर निर्भर है। प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर मुख्यतः बाल गीत, वर्णनात्मक तथा सरल साहित्यिक कविताएँ पढ़ाई जाती हैं। इसी संदर्भ में यहाँ कविता शिक्षण की मुख्य पाँच विधियों की चर्चा की गई है, ये हैं— (1) गीत एवं अभिनय विधि, (2) अर्थ बोध विधि, (3) खण्ड विधि, (4) व्याख्या विधि, और (5) मिश्रित विधि।

1. गीत एवं अभिनय विधि : नर्सरी तथा कक्षा एक से तीन तक के बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में संगीत प्रधान बाल गीतों तथा तुकांत पदों का समावेश होता है। इन गीतों में ध्वन्यात्मकता होती है जिन्हें मधुर स्वर तथा लय के साथ गाने में उन्हें आनंद आता है। अतः इस स्तर के बच्चों को बाल-कविताओं को पढ़ाने के लिए गीत तथा अभिनय विधि को अपनाना अधिक लाभदायक है। इन कविताओं को व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों रूपों में गाया जा सकता है। इस विधि में सर्वप्रथम अध्यापक उस गीत का मधुर स्वर में लय के साथ वाचन करता है। उसके पश्चात् अध्यापक और बच्चे हाथ से ताल देते हुए समवेत स्वर में गाते हैं और उन्हें आनंद की अनुभूति होती है। इन कविताओं के शिक्षण में कठिन शब्दों के अर्थ बताने तथा भावों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं होती। इन्हें तो बार-बार गाकर पढ़ने से ही कविता शिक्षण के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। इस विधि के अनुसार अध्यापक का आदर्श वाचन, विद्यार्थियों का अनुकरण वाचन, व्यक्तिगत वाचन, सामूहिक वाचन आदि कविता शिक्षण की प्रक्रिया के मुख्य सोपान बन जाते हैं।

कुछ बाल गीत *अभिनय प्रधान* होते हैं जिन्हें भाव के अनुसार अंग-संचालन करते हुए गाकर पढ़ोया जा सकता है। इनमें गीत एवं अभिनय दोनों का योग होता है। अभिनय प्रधान बाल गीतों में कुछ गीत ऐसे होते हैं जिनमें एक ही पात्र होता है और कुछ गीतों में एक से अधिक पात्र होते हैं। इस दृष्टि से अभिनय गीत व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इन गीतों को पढ़ाते समय अध्यापक बच्चों के सामने लय, स्वर एवं ताल के साथ आदर्श पाठ करता है। साथ ही उन गीतों के भावों को अंग-संचालन द्वारा स्पष्ट करता जाता है। फिर बच्चों को विभिन्न पात्रों की भूमिका में खड़ा कर दिया जाता है और बच्चे पात्रानुसार अभिनय सहित कविता पाठ करते हैं। यदि कविता में पशु-पक्षी आदि पात्र हैं तो बच्चों को वैसी वेशभूषा, मुखौटे, प्रतीक चिह्न आदि पहनकर कविता को अभिनय सहित गाने के लिए कहा जा सकता है।

यह विधि मनोवैज्ञानिक है। इसके द्वारा खेल ही खेल में बच्चों को बहुत-सी कविताएं कंठस्थ हो जाती हैं और उनमें कविता के प्रति रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। ध्यान रहे कि कविता पाठ में अंग-संचालन उसी सीमा तक हो जहाँ तक कक्षा में शालीनता और अनुशासन बना रहे।

2. अर्थ बोध विधि : इस विधि के द्वारा विद्यार्थियों को कविता की प्रत्येक पंक्ति का अर्थ बताया जाता है, किंतु इस विधि के अनुसरण से शिक्षण में नीरसता आ जाती है और पाठ गद्य जैसा बन जाता है। इस विधि से विद्यार्थी कविता का अर्थ तो समझ लेता है परन्तु उसे कविता की भावानुभूति और रसानुभूति नहीं हो पाती। इस विधि का एक और सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें विद्यार्थियों की सहभागिता न्यूनतम हो जाती है। परिणामतः अभीष्ट अधिगम नहीं हो पाता। इसीलिए इसे स्वतंत्र रूप से किसी भी स्तर के लिए उपयोगी नहीं माना जाता है। इस विधि का प्रयोग प्रश्नोत्तर विधि, तुलना विधि आदि की सहायता से करना उचित होगा।

3. प्रश्नोत्तर या खण्डान्वय विधि : कोई-कोई प्रबन्धात्मक कविता बहुत बड़ी होती है और उसे एक कालांश में पढ़ाना संभव नहीं होता ऐसी स्थिति में उसे कक्षा के आधार पर उचित खंडों या अन्वितियों में विभक्त कर लिया जाता है और एक-एक खण्ड पढ़ाते हुए पूरी कविता का शिक्षण किया जाता है परन्तु इस विधि में भी पहले पूरी कविता का एक साथ वाचन किया जाता है जिससे पूरा प्रसंग सामने आ जाए। फिर शिक्षण के लिए प्रस्तावित खण्ड का वाचन किया जाता है। उसके बाद प्रश्नोत्तर युक्ति की सहायता से उस खण्ड विशेष

Scanned by CamScanner

8

गद्य-शिक्षण

(Teaching of Prose)

हिन्दी-शिक्षण में 'गद्य-शिक्षण' का अनिवार्य स्थान है। गद्य के बिना हिन्दी पाठ्य-क्रम तथा हिन्दी पाठ्य-पुस्तक की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस में सन्देह नहीं कि गद्य इतना सरल और आनन्ददायक नहीं होता जितना पद्य, परन्तु 'गद्य-शिक्षण' के बिना 'हिन्दी-शिक्षण' का आरम्भ ही सम्भव नहीं है। वर्णमाला पढ़ाने के पश्चात् बच्चों को जो छोटे-छोटे वाक्य पढ़ाये जाते हैं वह वस्तुत: गद्य-शिक्षण की ओर ही पहला कदम होता है। गद्य-शिक्षण द्वारा ही विद्यार्थियों के शब्द भण्डार में वृद्धि की जाती है,। उन के ज्ञान-भण्डार को संबृद्ध बनाया जाता है, उन्हें गद्य-अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों से परिचित किया जाता है और उन्हें रचनात्मक लेखन कार्यों की ओर प्रेरित किया जाता है। गद्य की व्यावहारिक उपयोगिता के कारण पाठ्य-पुस्तकों में प्राय: पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक होता है। पद्य यदि सौन्दर्यानुभूति एवं रसास्वादन का स्रोत है तो गद्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान प्रदान करने का स्रोत है। हिन्दी शिक्षण में वाचन तथा मौखिक-अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों का आरम्भ गद्य-शिक्षण से होता है।

माध्यमिक स्तर पर गद्य-शिक्षण के लिए प्राय: सूक्ष्म एवं गहन पाठ (Intensive Reading) तथा द्रुत-पाठ (Extensive Reading) को आधार बनाया जाता है। द्रुत-पाठ (Extensive Reading) के लिए प्राय: सहायक पुस्तकें निर्धारित की जाती हैं। परन्तु गहन एवं सूक्ष्म पाठ (Intensive Reading) के लिए पाठ्य-पुस्तक में संकलित गद्य-पाठों को आधार बनाया जाता है।

गद्य-शिक्षण के उद्देश्य

'हिन्दी-शिक्षण के अन्तर्गत पद्य, गद्य, व्याकरण, रचना कार्य आदि भाषा एवं साहित्य के विभिन्न तत्त्वों तथा रूपों का शिक्षण प्रदान किया जाता है। इन में दो प्रकार के उद्देश्य निहित होते हैं – एक सामान्य उद्देश्य तथा दूसरा विशिष्ट उद्देश्य। सामान्य उद्देश्यों की परिधि व्यापक होती है और विशिष्ट उद्देश्यों का सम्बन्ध उस पाठ के साथ होता है जिसे कक्षा में पढ़ाया जाता है। इस प्रकार गद्य-शिक्षण के भी दो प्रकार के उद्देश्य हैं :-

1. सामान्य उद्देश्य (General Aims)

2. विशिष्ट उद्देश्य (Specific Aims)

आइए, इन का बारी-बारी उल्लेख करें।

1. गद्य-शिक्षण के सामान्य उद्देश्य- गद्य-शिक्षण के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

(i) विद्यार्थियों में शुद्ध-उच्चारण की योग्यता विकसित करना।

(ii) विद्यार्थियों को देव-नागरी लिपि का ज्ञान प्रदान करना।

(iii) विद्यार्थियों की वाचन में योग्यता विकसित करना।

(iv) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे पूरे मनोयोग के साथ सुन कर अर्थ ग्रहण कर सकें।

(v) विद्यार्थियों के शब्द-भण्डार में वृद्धि करना। उन्हें इस योग्य बनाना कि वे ज्यादा शब्दों का सक्रिय प्रयोग कर सकें।

(vi) विद्यार्थियों के सूक्ति-भण्डार में वृद्धि करना।

(vii) विद्यार्थियों को विभिन्न गद्य-शैलियों से परिचित कराना और उन्हें इस योग्य बनाना कि वे इन शैलियों का उचित प्रयोग कर सकें।

(viii) विद्यार्थियों की बोध-शक्ति, कल्पना-शक्ति तथा विवेचना-शक्ति विकसित करना।

(ix) विद्यार्थियों के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि करना।

(x) विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे भाषा के माध्यम से अन्य विचारों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।

(xi) विद्यार्थियों में मौन वाचन तथा अध्ययन की योग्यताएं विकसित करना।

(xii) विद्यार्थियों में साहित्यिक रूचियों को विकसित करना।

(xiii) विद्यार्थियों में रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों को विकसित करना।

(xiv) विद्यार्थियों में बौद्धिक, तार्किक एवं मानसिक शक्तियों को विकसित करना।

(xv) उन में साहित्य की 'गद्य' विद्या से आनन्द प्राप्त की योग्यता विकसित करना।

(xvi) गद्य-साहित्य की सहायता से उन्हें चारित्रिक-विकास की ओर अग्रसर करना।

2. गद्य-शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य- गद्य-शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य पाठ एवं विषय के अनुसार निर्धारित किये जाते हैं। गद्य-साहित्य की कई विधाएं हैं जैसे – कहानी, संवाद, निबन्ध, लघु-निबन्ध, जीवनी आदि। इन विधाओं के विभिन्न विषय होते हैं, जैसे सामाजिक, पारिवारिक, प्राकृतिक, राजनैतिक, नैतिक आदि। इन्हीं विषयों के अनुसार गद्य-शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। यदि किसी कहानी का विषय नैतिकता होगा तो उस के द्वारा विद्यार्थियों में नैतिक आदर्शों को जागृत करना, उस के शिक्षण का

Scanned by CamScanner

विशिष्ट उद्देश्य होगा। यदि किसी निबन्ध का विषय 'प्राकृतिक' होगा तो विद्यार्थियों में प्रकृति प्रेम उत्पन्न करना उस के शिक्षण का विशिष्ट उद्देश्य होगा। यदि किसी निबन्ध, कहानी या संवाद का विषय 'वैज्ञानिक' है तो उस के शिक्षण का विशिष्ट उद्देश्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक रूचियां विकसित करना होगा – आदि। इसी प्रकार विभिन्न विषयों तथा गद्य की विविध विधाओं के अनुसार गद्य-शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं।

'गद्य-शिक्षण' में अध्यापक की दृष्टि पाठ के विशिष्ट उद्देश्यों की ओर रहती है। सामान्य उद्देश्य स्वत: शिक्षण में समाहित हो जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि अध्यापक को समय-समय पर इस बात की जांच करते रहना चाहिए कि उस का 'गद्य-शिक्षण' किन सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सका।

गद्य-शिक्षण के शिक्षण-सोपान एवं शिक्षण-विधियां

किसी गद्य-पाठ के सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन के लिए उसे एक ही पीरीयड में पढ़ाना असम्भव सा प्रतीत होता है क्योंकि उसी पाठ के माध्यम से अध्यापक को कई सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करना होता है। अत: गद्य-पाठ के शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए 'इकाई-योजना' का प्रयोग करना चाहिए अर्थात् समूचे पाठ को विभिन्न इकाइयों में बांट कर प्रत्येक इकाई के लिए शिक्षण-योजना तैयार करनी चाहिए। शिक्षण-योजना को प्रत्येक सोपान में विभिन्न शिक्षण-विधियों का प्रयोग करते हुए शिक्षण-कार्य को सम्पूर्णता की ओर ले जाना चाहिए। यदि गद्य-पाठ छोटा है तो उसे एक पीरीयड में भी समाप्त किया जा सकता है। यदि गद्य-पाठ लम्बा है तो उसे एक से अधिक पीरीयडों में समाप्त करना चाहिए और प्रत्येक पीरीयड में एक इकाई का शिक्षण समाप्त करना चाहिए।

एक शिक्षा-विचारक **हर्बर्ट** (Herbert) **ने शिक्षण-योजना के लिए पांच सोपानों का सुझाव दिया है।** ये पांच सोपान इस प्रकार हैं :-

1. प्रस्तावना
2. विषय प्रवेश
3. तुलना एवं व्यवस्था
4. नियमीकरण
5. अभ्यास

ये पांचों सोपान गद्य-शिक्षण में सहायक तो हो सकते हैं, परन्तु इन्हें आदर्श नहीं मान लेना चाहिए। भाषा-शिक्षण के दृष्टिकोण से तीसरा तथा चौथा सोपान विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होते। 'नियमीकरण' व्याकरण पढ़ाते समय तो उपयोगी हो सकते हैं परन्तु पद्य या गद्य शिक्षण में नहीं।

गद्य-शिक्षण में निम्नलिखित छः सोपान उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं –

1. प्रस्तावना
2. प्रस्तुतीकरण या वाचन
3. व्याख्या
4. विचार-विश्लेषण
5. आवृत्ति
6. गृह-कार्य

आइए, गद्य-शिक्षण के इन सोपानों का बारी-बारी वर्णन करें।

1. प्रस्तावना – गद्य-शिक्षण के इस पहले सोपान का उद्देश्य विद्यार्थियों में पढ़ने के प्रति रूचि उत्पन्न करना तथा शिक्षण के लिए प्रेरक वातावरण का निर्माण करना है। एक प्रसिद्ध शिक्षण-सूत्र है – 'ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना' (From known to unknown)। प्रस्तावना में इस शिक्षण-सूत्र का अनुकरण करते हुए विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का परीक्षण करना चाहिए। विद्यार्थियों के पूर्व-ज्ञान परीक्षण के लिए अध्यापक को छोटे-छोटे प्रश्नों का निर्माण करना चाहिए। प्रश्नों का आपेक्ष उत्तर छोटा होना चाहिए और प्रश्न क्रमश: उद्देश्य-कथन की ओर अग्रसर होने चाहिएं। पूर्व ज्ञान परीक्षण का अन्तिम प्रश्न ऐसा होना चाहिए जिसे पाठ के उद्देश्य कथन के साथ सम्बन्धित किया जा सके। अन्तिम प्रश्न के उत्तर में अध्यापक को सम्बन्धित पाठ का उद्देश्य बताना चाहिए और विषय के प्रस्तुतीकरण की ओर बढ़ाना चाहिए।

पूर्व-ज्ञान परीक्षण के अतिरिक्त अन्य किसी विधि से भी अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए प्रेरित कर सकता है और शिक्षण के लिए उपयोगी वातावरण का निर्माण कर सकता है जैसे – लेखक का परिचय दे कर, किसी घटना का वर्णन कर के, किसी शिक्षण-सहायक उपकरण का प्रयोग कर के आदि, परन्तु प्रस्तावना सरल, स्पष्ट, रूचिकर एवं प्रेरक होनी चाहिए। इस के लिए शिक्षा-शास्त्री प्राय: 'पूर्व-ज्ञान परीक्षण' का ही समर्थन करते हैं।

2. प्रस्तुतीकरण – शिक्षण के लिए उचित वातावरण तथा विद्यार्थियों को प्रेरित करने के पश्चात् अध्यापक को उद्देश्य कथन करना चाहिए और तत्पश्चात वाचन द्वारा विषय-प्रवेश करना चाहिए। 'वाचन' गद्य-शिक्षण के प्रस्तुतीकरण' सोपना का महत्त्वपूर्ण अंक है।

'वाचन' में निम्नलिखित तीन प्रकार का वाचन सम्मिलित है :-

(क) अध्यापक द्वारा आदर्श-पाठ

(ख) विद्यार्थियों द्वारा अनुकरण-पाठ (सस्वर-वाचन)

Scanned by CamScanner

(ग) विद्यार्थियों द्वारा मौन-पाठ।

आइए, इन का विस्तृत वर्णन करें।

(क) अध्यापक द्वारा आदर्श-पाठ- गद्य-शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विद्यार्थियों में शुद्ध उच्चारण तथा गति के साथ-साथ पढ़ने की योग्यता विकसित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्यापक को पहले आदर्श-पाठ प्रस्तुत करना चाहिए। उसे शुद्ध उच्चारण, उचित हाव-भाव तथा स्वर के उचित आरोह-अवरोह के साथ गद्यांश का पाठ करना चाहिए ताकि विद्यार्थी उस का अनुकरण करते हुए शुद्ध वाचन के लिए उत्साहित हो सकें। अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ की कई उपयोगिताएं हैं, जैसे –

(i) अध्यापक का आदर्श-वाचन सुन कर विद्यार्थी जब उस का अनुकरण करते हुए वाचन करते हैं तो उन में अशुद्धियों की सम्भावना कम हो जाती है।

(ii) आदर्श-वाचन से विद्यार्थियों को पढ़ाये जा रहे पाठ का कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है और पाठ के प्रति उनकी रूचि और अधिक जागृत हो उठती है।

(iii) आदर्श-वाचन अध्यापक को शिक्षण में सक्रिय बनाता है और उसकी सक्रियता विद्यार्थियों को भी सक्रिय बनने की प्रेरणा देती है।

(iv) अध्यापक के आदर्श-वाचन से विद्यार्थियों की एकाग्रता में विकास होता है।

(v) अध्यापक के आदर्श-वाचन से विद्यार्थियों को पाठ्य-सामग्री का अर्थ कुछ कुछ समझ आने लगता है जो आगे चल कर अर्थ-व्याख्या तथा विचार विश्लेषण में सहायक सिद्ध होता है।

चैम्पीयन महोदय (Champion) ने आदर्श-पाठ के महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा है :-

"आदर्श रूप में शिक्षक को पाठ के आरम्भ में ही पढ़ना चाहिए और इसका उद्देश्य यह हो कि विद्यार्थी गद्यांश का सामान्य प्रवाह तथा उद्देश्य समझ जायें।"

(ख) विद्यार्थियों द्वारा अनुकरण-पाठ (सस्वर-वाचन) — अध्यापक के आदर्श-पाठ के पश्चात् विद्यार्थियों को सस्वर वाचन (Loud Reading) कराना चाहिए। सस्वर-वाचन करते हुए विद्यार्थी अध्यापक के आदर्श-वाचन का अनुकरण करते हैं और यथा सम्भव उचित प्रवाह तथा शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ने का प्रयास करते हैं। केवल एक या दो विद्यार्थियों से सस्वर वाचन कराना पर्याप्त नहीं बल्कि ज्यादा से ज्यादा विद्यार्थियों को इसका अवसर प्रदान करना चाहिए। पहले अच्छे विद्यार्थियों से पढ़वाना चाहिए। बाद में दूसरे विद्यार्थियों से पढ़वाना चाहिए।

विद्यार्थियों के सस्वर-पाठन में निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना जरूरी है :-

(i) वाचन करते समय विद्यार्थी को यथा-सम्भव बीच में नहीं टोकना चाहिए। वाचन के लिए आवश्यक निर्देश पहले दे देने चाहिएं।

(ii) वाचन में हो रही अशुद्धियों को वाचन के पश्चात् विद्यार्थियों की सहायता से दूर करना चाहिए।

(iii) वाचन के दौरान अध्यापक को सम्पूर्ण कक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए।

(ग) विद्यार्थियों द्वारा मौन वाचन— विद्यार्थियों द्वारा सस्वर-वाचन के पश्चात् उन्हें कुछ समय मौन-वाचन के लिए भी देना चाहिए। मौन-वाचन से विद्यार्थियों को तेज़ गति से पढ़ने और विचार-ग्रहण करने का शिक्षण मिलता है। इस से उनकी बौद्धिक क्षमताओं का विकास होता है।

मौन-वाचन के पश्चात् गद्य-शिक्षण का वाचन-क्रम समाप्त हो जाता है और अध्यापक अगले शिक्षण-सोपान 'व्याख्या' (Explanation) की ओर बढ़ता है।

3. व्याख्या (Explanation) — पठित गद्यांश की अर्थ एवं भाव ग्रहण कराने के लिए अध्यापक को कठिन शब्दों, लोकोक्तियों, मुहावरों तथा वाक्यांशों की व्याख्या करनी होती है। इसके लिए निम्नलिखित शिक्षण-विधियों का प्रयोग किया जा सकता है :-

(क) उद्बोधन-विधि (Eliciting Method)

(ख) प्रवचन-विधि (Telling Method)

(ग) स्पष्टीकरण-विधि (Elucidating Method)

आइए, इन शिक्षण विधियों का बारी-बारी वर्णन करें।

(क) उद्बोधन-विधि (Eliciting Method) — इस विधि के द्वारा अध्यापक कठिन शब्दों का अर्थ स्वयं नहीं बताता बल्कि विभिन्न साधनों से अर्थ उद्बोधित करता है। विद्यार्थी प्रत्यक्ष, अनुमान या कल्पना के द्वारा अर्थ तक पहुंचने का प्रयास करते हैं, जैसे – अध्यापक वास्तविक वस्तु का प्रत्यक्ष दर्शन करा कर 'अर्थ' समझा सकता है। उदाहरण के तौर पर 'छाता' शब्द का अर्थ समझाने के लिए वह 'छाता' नामक वस्तु विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष रूप से दिखा सकता है : 'छाता' का चित्र या मॉडल प्रस्तुत कर सकता है। किसी क्रिया या अर्थ उद्बोधित करने के लिए वह उस क्रिया को करके दिखा सकता है ; अंग संचालन द्वारा विभिन्न शब्दों के अर्थ समझा सकता है। इस प्रकार विभिन्न साधनों का प्रयोग करते हुए वह उद्बोधन विधि द्वारा वह विद्यार्थियों को कठिन शब्दों का अर्थ समझा सकता है।

(ख) प्रवचन विधि (Telling Method) — किसी शब्द का अर्थ उद्बोधित न हो सकने की स्थिति में अध्यापक को स्वयं उसका अर्थ बता देना चाहिए। इसे प्रवचन विधि कहते हैं। इसके लिये अध्यापक मुख्यत: निम्नलिखित रीतियां अपना सकता है, जैसे :-

Scanned by CamScanner

कैप्सूल 13.1

व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य तथा शिक्षण विधियाँ

व्यवहारगत उद्देश्य

इस कैप्सूल के अध्ययन के पश्चात् आप—

1. भाषा शिक्षण के संदर्भ में व्यावहारिक व्याकरण के स्थान तथा उसके शिक्षण उद्देश्य बता सकेंगे।
2. व्याकरण शिक्षण विधियों का कक्षा शिक्षण में उचित उपयोग कर सकेंगे।

13.1.1 व्याकरण की संकल्पना तथा भाषा शिक्षण में उसका स्थान

व्याकरण भाषा की प्रकृति, उसकी विशेषताओं का अध्ययन है, भाषा की संरचना को समझने का एक वैज्ञानिक प्रयत्न है। यह भाषा के नियमों की संहिता है जो हमें भाषा विशेष की वाक्य-रचना, शब्द-रचना की व्याख्या और भाषा संबंधी व्यवस्थाओं का ज्ञान देती है। डॉ. स्वीट ने व्याकरण को "भाषा का शरीर-विज्ञान" कहा है। इस दृष्टि से भाषा शिक्षक के लिए व्याकरण का ज्ञान उतना ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है जितना किसी चिकित्सक के लिए मनुष्य के शरीर-विज्ञान का। जिस प्रकार मानव के शरीर-विज्ञान की जानकारी चिकित्सक को मानव शरीर की संरचना, उसमें आए हुए विकारों को समझने तथा यथानुरूप निदान एवं उपचार में सहायता प्रदान करता है, उसी प्रकार व्याकरण का ज्ञान शिक्षक को भाषा-संरचना को समझकर विद्यार्थी की भाषा में आए हुए विकारों के निदान और उपचार में सहायता प्रदान करता है।

भाषा शिक्षण में शिक्षक अपने व्याकरण ज्ञान का प्रयोग इस प्रकार करे कि विद्यार्थी व्याकरण-सम्मत भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सही रूप से बोलना और लिखना सीख सकें। वे अपनी भाषाई अशुद्धियों को जानकर उनका स्वयं निराकरण कर सकें।

व्याकरण शिक्षण में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि शुद्ध भाषा का प्रयोग एक कला है, कोरा किताबी ज्ञान नहीं। शुद्ध भाषा सिखाने के लिए व्याकरण का सैद्धांतिक ज्ञान उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि व्याकरण के व्यावहारिक नियमों का प्रयोग। इस दृष्टि से आधुनिक भाषाविद् एवं व्याकरणवेत्ता *व्यावहारिक व्याकरण* के शिक्षण पर बल देते हैं। इसका आशय यह है कि भाषा-प्रयोग की दृष्टि से व्याकरण का उपयोग किया जाए। शब्द-भेदों—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और क्रिया-विशेषण आदि के नियमों, परिभाषाओं की अपेक्षा उनके व्यावहारिक संरचनात्मक उदाहरणों, प्रयोगों और अभ्यासों पर ही बल दिया जाए ताकि विद्यार्थी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में प्रभावशाली ढंग से भाषा के परिनिष्ठित रूप का प्रयोग करने में सक्षम हो सके।

Scanned by CamScanner

13.1.2 व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य

प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर व्याकरण शिक्षण से निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति की अपेक्षा की जाती है।

(क) प्राथमिक स्तर (कक्षा एक से पाँच)

- संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया पदों को पहचानने की योग्यता।
- व्याकरण की दृष्टि से भाषा शुद्ध रखने की योग्यता।
- भाषा के शुद्ध प्रयोग की योग्यता।
- समानार्थक-विपरीतार्थक शब्द तथा उपसर्ग प्रत्यय का प्रयोगात्मक ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता।

विशेष टिप्पणी : प्राथमिक कक्षाओं में व्यावहारिक व्याकरण का ही ज्ञान कराया जाए, व्याकरणिक परिभाषाओं का परिचय न दिया जाए।

(ख) उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा छः से आठ)

- उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों के पाठों में प्रयुक्त भाषिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता।
- हिंदी भाषा की प्रकृति, रचना और गठन को समझने की योग्यता।
- हिंदी भाषा के विभिन्न अवयवों का विश्लेषण करने की योग्यता।
- मानक तथा शुद्ध भाषा लिखने की योग्यता।
- प्रत्येक व्याकरणिक इकाई के प्रयोग की योग्यता।
- भाषा के शुद्ध-अशुद्ध रूपों को परखने और अशुद्ध रूपों का निराकरण करने की योग्यता।

व्याकरण शिक्षण के द्वारा कक्षा आठ तक के विद्यार्थियों में उपर्युक्त योग्यताओं का विकास करना अपेक्षित है।

अभ्यास कार्य

❑ प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर व्याकरण शिक्षण से प्राप्त उद्देश्यों को लिखिए।

निर्देश

सूचीबद्ध कीजिए

13.1.3 व्याकरण शिक्षण विधियाँ

भाषा शिक्षण के संदर्भ में व्याकरण शिक्षण की उपयोगिता तभी सिद्ध की जा सकती है, जबकि व्याकरण शिक्षण के लिए उपयुक्त विधि अपनाई जाए। यह अध्यापक के विवेक पर निर्भर करता है कि विद्यार्थियों के स्तर, उनकी आवश्यकता और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार किस विधि को प्रयोग में लाना उचित होगा जिससे वह अपने व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सके। इस दृष्टि से यहाँ व्याकरण शिक्षण की विधियों पर विचार करना युक्तिसंगत होगा।

निगमन विधि : निगमन विधि के अनुसार विद्यार्थियों को व्याकरण के नियम या परिभाषाएँ बतलाकर उनके उदाहरण दे दिए जाते हैं। इसके दो रूप हैं— सूत्र विधि और पाठ्यपुस्तक विधि। सूत्र विधि में अध्यापक विद्यार्थियों को व्याकरण के नियम, सूत्र या सिद्धांत और उनके लक्षण तथा उदाहरण बता देता है। अतएव यह विधि उपयोगी नहीं मानी जाती क्योंकि इसमें प्रयोगात्मक पक्ष के स्थान पर सैद्धांतिक पक्ष पर बल होता है। पाठ्यपुस्तक विधि में भी विद्यार्थी व्याकरण की पुस्तक में दी गई संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और क्रिया-विशेषण आदि की परिभाषाएँ और नियम रट लेते हैं। इससे भी विद्यार्थियों को भाषा के प्रयोग का ज्ञान और अभ्यास नहीं हो पाता। व्याकरण के सभी नियम याद कर लेने के बाद विद्यार्थी भाषा के मौखिक और लिखित व्यवहार में कुशलता नहीं प्राप्त कर सकते। इस विधि को उपयोगी बनाने की दृष्टि से इसमें भाषा-प्रयोग की शुद्धता के उदाहरणों पर अधिक बल देना चाहिए।

Scanned by CamScanner

आगमन विधि : इस विधि के अनुसार विद्यार्थी विभिन्न उदाहरणों की सहायता से व्याकरण के सामान्य नियमों, परिभाषाओं अथवा सिद्धान्तों का निर्धारण करते हैं। यह विधि निगमन विधि की ठीक उलटी है। इसमें विद्यार्थियों की व्याकरण की संरचनाओं का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता है और विद्यार्थी उन्हीं संरचनाओं के आधार पर स्वयं व्याकरण के नियमों को खोजते हैं तथा उन्हें निर्धारित करते हैं। आगमन विधि के भी दो रूप माने जाते हैं— समवाय विधि और प्रयोग विधि। समवाय विधि के अनुसार जैसा प्रारंभ में कहा जा चुका है व्याकरण का शिक्षण गद्य या रचना के पाठों के साथ ही किया जाता है। इन पाठों के साथ ही प्रसंग के अनुकूल शब्द-रचना, वर्तनी, उच्चारण और वाक्य-रचना आदि के उदाहरण और अभ्यास दे दिए जाते हैं जिनसे अध्यापक विद्यार्थियों को व्याकरणिक रूपों और नियमों का ज्ञान तथा अभ्यास भाषा शिक्षण से जोड़कर कराते हैं। प्रयोग विधि से व्याकरण शिक्षण करते समय अध्यापक विद्यार्थियों के सामने सबसे पहले समाज में विभिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त होने वाली व्याकरणिक संरचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत करता है। विद्यार्थी उदाहरणों में प्रयुक्त समान गुण, कार्य और लक्षण वाले अंशों को पहचानता है और उन्हीं के आधार पर नियमों या सिद्धान्तों का निर्धारण करता है। अध्यापक विद्यार्थियों से उनका प्रयोग और अभ्यास कराता है। इस विधि में चार सोपानों का अनुसरण किया जाता है— उदाहरण, उनकी तुलना एवं विश्लेषण, नियमीकरण और परीक्षण तथा अभ्यास।

निगमन विधि की अपेक्षा आगमन विधि अधिक उपयुक्त, वैज्ञानिक और स्वाभाविक है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों को चिंतन, परिवीक्षण, सामान्यीकरण और अभ्यास का उचित अवसर प्राप्त होता है। इससे विद्यार्थियों का न केवल मानसिक विकास होता है, अपितु उन्हें स्वयं सीखने का अवसर भी प्राप्त होता है। वह स्वयं अन्वेषण द्वारा जो कुछ भी सीखता है, वह स्थायी होता है। इसके अतिरिक्त इसमें शिक्षाशास्त्र के शिक्षण सूत्रों— सरल से कठिन, ज्ञात से अज्ञात आदि का भी यथाविधि पालन होता है। अतः आगमन विधि को व्याकरण शिक्षण की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त माना जा सकता है। फिर भी कक्षा स्तर, आवश्यकता, देश, काल और परिस्थिति के अनुसार दोनों ही विधियों का समन्वय यथावसर अपेक्षित होता है।

Scanned by CamScanner

गृहकार्य

19.0 प्रस्तावना

शिक्षण की प्रक्रिया तीन सोपानों में संपन्न होती है— सिद्धांत, अभ्यास और प्रयोग एवं व्यवहार। सिद्धांत के अंतर्गत विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तक का सैद्धान्तिक रूप से ज्ञान कराया जाता है। सिद्धांतों की जानकारी के आधार पर विद्यार्थी अभ्यास कार्य करते हैं। ये दोनों सोपान कक्षा शिक्षण की स्थिति में पूरे कर लिए जाते हैं, परन्तु प्रयोग एवं व्यवहार का कार्य कक्षा में पूरी तरह संपन्न नहीं हो सकता। यह तभी संभव है, जबकि विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में उसे व्यवहार में लाया जाए। अर्जित ज्ञान को व्यवहार में लाने से उसमें स्थायित्व आता है। ज्ञान को स्थाई रूप देने और विद्यार्थियों की आदत निर्माण का अंग बनाने के लिए गृहकार्य की आवश्यकता है। इस प्रकार गृहकार्य कक्षा शिक्षण का विस्तार और पूरक है।

आज के वैज्ञानिक युग में विद्यार्थी कम से कम समय में, कम से कम प्रयास द्वारा अधिक से अधिक विषयवस्तु को रोचक एवं सरस वातावरण में सीखना चाहते हैं। वे सामान्यतः नहीं चाहते हैं कि वे घर पर भी विद्यालय का काम करें, तथापि कक्षा में इतना समय मिलना संभव नहीं, जितना कि पाठ्य-सामग्री को पूरी तरह आत्मसात् करने के लिए पर्याप्त हो। इसलिए गृहकार्य देना आवश्यक है, परन्तु यह कार्य केवल खाना पूर्ति के लिए देना उपयुक्त नहीं। यह अपने उद्देश्य को तभी पूरा कर सकेगा, जबकि शिक्षण की प्रक्रिया को अध्यापक इतना रोचक और आकर्षक बनाए कि गृहकार्य के प्रति विद्यार्थियों में अभिरुचि उत्पन्न हो और उसे पूरा करने में उन्हें उल्लास और आत्म-संतोष का अनुभव हो।

प्रस्तुत मॉड्यूल में गृहकार्य के महत्त्व और स्वरूप का निरूपण करते हुए उसके सतत मूल्यांकन पर बल दिया गया है। इसके साथ ही उसकी सार्थकता सिद्ध करने की दृष्टि से उसके संशोधन एवं मूल्यांकन की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। संशोधन कार्य या मूल्यांकन गृहकार्य का अभिन्न अंग है।

व्यवहारगत उद्देश्य

इस मॉड्यूल के अध्ययन के पश्चात् आप—

1. शिक्षण में गृहकार्य के महत्त्व और स्वरूप को समझ कर उस पर चर्चा कर सकेंगे।
2. गृहकार्य के सतत मूल्यांकन और संशोधन की विधियों की जानकारी प्राप्त कर उन्हें प्रयोग में ला सकेंगे।

19.1 गृहकार्य : महत्त्व तथा स्वरूप

कक्षा शिक्षण में पाठ की समाप्ति के समय पाठ विशेष से संबंधित जो कार्य, घर से पूरा करके लाने के लिए विद्यार्थियों को दिया जाता है, उसे गृहकार्य कहते हैं। इस कार्य के अंतर्गत शब्द रचना, प्रयोग, भावाभिव्यक्ति, सारांश, वाक्य रचना, गहन स्थलों की व्याख्या आदि का उल्लेख किया जा सकता है। पाठ से संबंधित सहायक पुस्तकों का पठन या स्वतंत्र रूप से लिखकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करना भी गृहकार्य का ही दूसरा रूप है।

महत्त्व

गृहकार्य शिक्षण का एक सोपान है। अन्य सोपानों की तरह यह भी सोद्देश्य है और पाठ का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके द्वारा पाठ से उपार्जित ज्ञान को व्यवहार में लाकर उसे स्थाई बनाया जाता है। किसी भी पाठ द्वारा प्रदत्त अधिगम अनुभवों को आत्मसात् करने, उसका अभ्यास करने

Scanned by CamScanner

और उन्हें व्यवहार में लाने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता पड़ती है। अध्यापक को कक्षा शिक्षण की सीमित अवधि में इतना समय नहीं मिल पाता। कक्षा में पढ़ाई गई विषय सामग्री को पूर्ण रूप से आत्मसात् करने और प्रयोग में लाने के लिए विद्यार्थियों को कक्षा से बाहर भी समय की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कक्षा शिक्षण के समय प्राप्त अधिगम अनुभवों के विस्तार अथवा संवर्द्धन के लिए गृहकार्य का सहारा लिया जाता है। शिक्षण की प्रक्रिया को पूर्णता देने के लिए अध्यापक को चाहिए कि वह पठित पाठ से संबंधित कुछ प्रश्न और अभ्यास कार्य आदि घर पर पूरा करने के लिए विद्यार्थियों को अवश्य दें, ताकि विद्यार्थी घर पर अपने समय का सदुपयोग कर सकें और अपने चिन्तन, मनन तथा स्वाध्याय द्वारा उस कार्य को पूरा कर सकें। इससे विद्यार्थियों में पाठ्य-सामग्री को व्यवहार में लाने और स्वाध्याय द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ाने के प्रति उनमें अभिरुचि उत्पन्न होती हैं। इसके साथ-साथ कार्य करने की आदत का निर्माण भी होता है। गृहकार्य कक्षा शिक्षण का पूरक है। उससे विद्यार्थियों के ज्ञान का दृढ़ीकरण तो होता ही है, उसमें पूर्णता भी आती है। इस प्रकार गृहकार्य का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

स्वरूप

गृहकार्य के अनेक रूप हो सकते हैं। इनके रूपों का निर्धारण विशेषतः पठित पाठ की प्रकृति पर निर्भर करता है। पढ़े हुए पाठों—कहानी, कविता, नाटक, वार्तालाप आदि का सारांश विद्यार्थी अपने शब्दों में लिखकर ला सकते हैं। यदि उच्च कक्षा के विद्यार्थी हैं, तो साहित्य की एक विधा का दूसरी विधा में रूपांतरण भी कराया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों की आत्माभिव्यंजन तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है। इसके अतिरिक्त वे साहित्य की विभिन्न शैलियों से भी व्यावहारिक रूप में परिचय प्राप्त कर लेते हैं।

सामान्यतः यह मान लिया जाता है कि केवल लिखित रूप में किया गया कार्य ही गृहकार्य है। यह धारणा भ्रमात्मक है। विद्यालय से बाहर ऐसा कोई भी मौखिक, अवलोकनात्मक अथवा परियोजनात्मक कार्य जिसके द्वारा कक्षा-अधिगम सुस्पष्ट, सुबोध और संपुष्ट हो गृहकार्य के रूप में दिया जा सकता है।

पाठों में कुछ ऐसी कविताओं, कहानियों, चुटकुलों अथवा उक्तियों आदि का समावेश रहता है जिनके प्रयोग से विद्यार्थियों की भाषाई क्षमता का विकास होता है। उन्हें घर से कंठाग्र करके लाने का आदेश अध्यापक विद्यार्थियों को दे सकता है। पाठ में आए विचारों और भावों को विभिन्न शैलियों में व्यक्त कराया जा सकता है। पाठों में कुछ ऐसे तत्त्वों का संकेत होता है जिनको पूरी तरह समझने के लिए विद्यार्थियों को अतिरिक्त जानकारी की अपेक्षा रहती है। विद्यार्थियों से गृहकार्य के रूप में उन तत्त्वों और सूचनाओं का अन्य पुस्तकों से संकलन या संग्रह कराया जा सकता है। लिखित कार्य को पूरा करने के लिए अथवा उसका अधिक अभ्यास कराने के लिए अनुलेखन, प्रतिलेखन, अनुवाद, वाक्य प्रयोग और लिखित रचना से संबंधित प्रश्न हल करवाना अधिक उचित रहता है। पाठ में प्रयुक्त भाषिक तथ्यों, व्याकरणिक तत्त्वों और वर्तनी आदि से युक्त शब्दों की तालिकाएँ तैयार कराई जा सकती हैं। शब्दों के अर्थ शब्दकोश से ढूँढ़ने के लिए कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त घर पर दूरसंचार के साधनों के द्वारा अच्छे भाषाई कार्यक्रमों को सुनकर उनसे विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं। अच्छे संवादों को सुनकर अनुकरण द्वारा श्रवण और उच्चारण अभ्यास किया जा सकता है।

गृहकार्य देते समय कुछ बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है। गृहकार्य पाठ की विषयवस्तु की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। गृहकार्य सीमित मात्रा में ही दिया जाए, ताकि विद्यार्थी उसे उत्साहित होकर लगन, परिश्रम और अभिरुचि के साथ पूरा कर सकें। उन्हें इस बात का अनुभव न हो कि उन्हें अध्यापक के भय से गृहकार्य का बोझ उतारना है। गृहकार्य थोड़ी मात्रा में इतना रोचक हो कि विद्यार्थी स्वतः ही उसे पूरा करने के लिए लालायित हों।

Scanned by CamScanner

वे गृहकार्य करते समय इस बात का भी अनुभव करें कि इससे उनके ज्ञान की अभिवृद्धि होगी। कठिनाई स्तर की दृष्टि से गृहकार्य संतुलित होना चाहिए—वह न तो बहुत कठिन हो, न बहुत सरल; न बहुत अधिक हो और न बहुत कम। यह पाठ्यवस्तु से किसी न किसी रूप में संबद्ध अवश्य होना चाहिए।

अभ्यास कार्य

निर्देश

- ❑ प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों से गृहकार्य के कुछ नमूने छाँटिए तथा उनका चार्ट बनाइए। — चयन कीजिए और सामग्री निर्माण कीजिए
- ❑ पाठों की प्रकृति के अनुसार गृहकार्य की तालिकाएँ बनाइए। — सामग्री निर्माण कीजिए

19.2 गृहकार्य का मूल्यांकन तथा संशोधन विधियाँ

गृहकार्य की जाँच यथासमय और यथाविधि होनी चाहिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गृहकार्य लिखित भी हो सकता है तथा मौखिक एवं परियोजनात्मक भी। मौखिक रूप से करके लाने वाले गृहकार्य के संबंध में आप पहले से कुछ प्रश्न स्वयं तैयार कर लें और फिर विद्यार्थियों द्वारा किए गए गृहकार्य का मूल्यांकन उनसे प्रश्न पूछकर करें। इस संबंध में मौखिक चर्चा का आयोजन भी किया जा सकता है। परियोजनात्मक गृहकार्य में विद्यार्थियों द्वारा संकलित सामग्री का अवलोकन कर उनके कार्य का मूल्यांकन करें। लिखित गृहकार्य के मूल्यांकन के लिए विद्यार्थियों के गृहकार्य की उत्तर पुस्तिकाएँ बदल कर विद्यार्थियों में वितरित कर दें और विद्यार्थियों से ही उनको संशोधित कराएँ। यदि आवश्यक हो तो संशोधन करने वाले विद्यार्थियों के मार्गदर्शन के लिए सही उत्तर श्यामपट्ट पर लिख दें। अध्यापक स्वयं भी उन उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच करके विद्यार्थियों की कमियों से उन्हें अवगत करा सकता है और उनका संशोधन करके उन्हें सुधारने का आदेश दे सकता है। यदि इनके अतिरिक्त भी कोई सुविधाजनक विधि हो तो अध्यापक उसे अपना सकता है। अध्यापक को अपनी डायरी में प्रत्येक विद्यार्थी के गृहकार्य का लेखा-जोखा अवश्य रखना चाहिए, ताकि समय-समय पर उनकी प्रगति का पता चलता रहे। गृहकार्य पूरा न करने वाले विद्यार्थियों के अभिभावकों को कार्य पूरा न करने की निरंतर सूचना मिलती रहनी चाहिए, ताकि वे अपने बालकों को गृहकार्य पूरा करने के लिए प्रेरित कर सकें और विद्यार्थियों की सजग रहकर कार्य पूरा करने की आदत बनी रहे। गृहकार्य को भली प्रकार पूरा करने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए।

Scanned by CamScanner

हिन्दी-पाठ्य पुस्तक समीक्षा
(Critical Evaluation of Hindi-Text-Books)

विद्यालयों में छात्र-छात्राओं को भाषा की शिक्षा नियमित रूप से देने के लिये भाषा के पाठ्यक्रम में हिन्दी पाठ्य पुस्तकों का विशेष स्थान है । क्योंकि पाठ्य पुस्तक के द्वारा यह निश्चित हो जाता है कि किस स्तर के छात्र-छात्राओं को कितने समय में कितना कुछ पढ़ाना है । विद्यालय की शिक्षा के लिये पाठ्य पुस्तक सशक्त एवं सार्थक साधन है । शिक्षक के लिये पाठ्य-पुस्तक वास्तविक पाठ्यक्रम के विकल्प के रूप में कार्य करती है । शिक्षक के लिये पाठ्य पुस्तक हिन्दी शिक्षण के क्षेत्र में सबसे उत्तम साधन है ।

पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता

शिक्षण प्रक्रिया न तो एक पक्षीय है और न ही दो पक्षीय बल्कि यह तीन पक्षीय प्रक्रिया है । शिक्षण प्रक्रिया वास्तविक रूप से त्रिकोण के समान है जिसकी एक भुजा शिक्षक और दूसरी भुजा शिक्षा प्राप्त करने वाला अर्थात् शिक्षार्थी (विद्यार्थी) और तीसरी सशक्त महत्त्वपूर्ण भुजा है शिक्षण के साधन जिसके बिना शिक्षण प्रक्रिया का सुचारु रुप से चलना असम्भव है ।

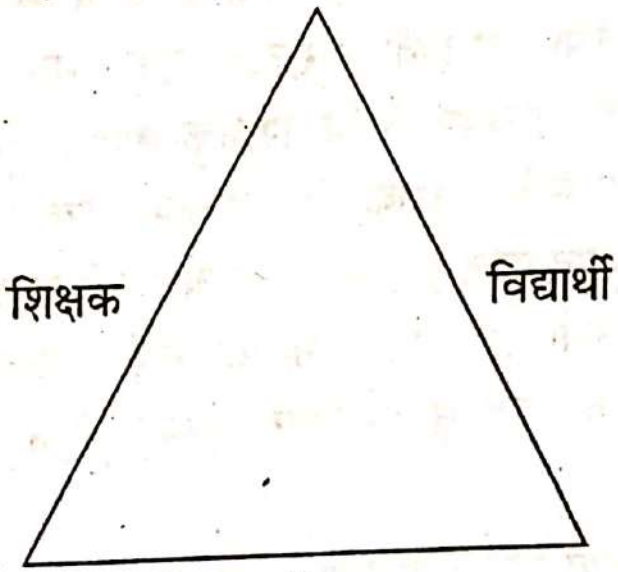

शिक्षण के साधन

छात्र-छात्राओं का भाषा शिक्षण करते समय शिक्षक को पहले अनेक बातों पर सोच विचार और मनन करना पड़ता और बाद में पढ़ाता है । पढ़ाने से पहले स्वाभाविक रूप से

Scanned by CamScanner

स्वत: कुछ प्रश्न उठते हैं जैसे कि वह क्या पढ़ाये ? कैसे पढ़ाये ? और कितना पढ़ाये ? यह नहीं है कि ऐसे प्रश्न केवल शिक्षक तक ही सीमित रहते हैं बल्कि छात्र-छात्राओं के मस्तिष्क में भी कुछ ऐस ही प्रश्न उठते हैं जैसे उन्होंने जो कुछ सीखा है उसको कैसे दोहरायें ? अधिक से अधिक पढ़ाना कैसे सम्भव हो सकता है ? कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त कैसे पढ़ा जाये और कहां पढ़ा जाये । इन सभी प्रश्नों का उत्तर एक वाक्य में मिलता है और वो है- पाठ्य पुस्तक । इसलिये पाठ्य पुस्तक हिन्दी शिक्षण प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । निम्न कारणों से इसकी विशेष रुप से उपयोगिता है-

1. ज्ञानोपार्जन के लिये- पाठ्य पुस्तक ज्ञानोपार्जन का सर्वोत्तम साधन है । यह बालकों को उन उपयोगी बातों और अनुभवों का ज्ञान देती है जिसकी प्राप्ति से बालक अपने जीवन को आनन्ददायक और सुखमय बना सके । परन्तु ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत ही नहीं बल्कि अपार है और सभी बातों को मौखिक रुप से एक समय में नहीं बताया जा सकता और न ही उचित है । ज्ञान के क्षेत्र की दृष्टि से अगर देखा जाये तो व्यक्ति जो कुछ भी जानता है वो बहुत कम है । बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जिनको शिक्षक स्वयं भी नहीं जानता । ऐसी परिस्थितियों में पाठ्य पुस्तक शिक्षक की सहायक बनकर उसका मार्गदर्शन करती हैं । वैसे भी शिक्षक को भाषा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने हेतु उन सभी बातों का जानना आवश्यक होता है जिन के विषय में बालकों को ज्ञान नहीं होता । छात्र-छात्राएं भी पाठ्य पुस्तकों को पढ़कर बहुत सी नई बातें सीख सकते हैं और सीखी हुई बातों को पक्का करने के लिये दुहरा सकते हैं । इस प्रकार पाठ्य पुस्तकें दोनों छात्र-छात्राओं और शिक्षक के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं ।

2. छात्र-छात्राओं की क्षमतानुसार भाषा-शिक्षण करने हेतु- सभी बालकों की सीखने की क्षमता एक जैसी नहीं होती और न ही एक समय में सब कुछ सीख सकते हैं । ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि शिक्षक बालकों को उतना ही पढ़ाये जितना बालक सरलता से समझ सकें । इसके लिए शिक्षक साल में दिये जाने वाले ज्ञान को बालकों की क्षमता का ध्यान रखते हुए इस प्रकार बांट सकता है जिससे उद्देश्य भी पूरा हो जाये और बालक उसे भली-भांति ग्रहण भी कर सकें । इसके लिए भी पाठ्य-पुस्तकें आवश्यक हैं ताकि शिक्षक अपनी सुविधानुसार बालकों की क्षमता का ध्यान रखते हुए उन्हें ज्ञान दे सके ।

3. स्तरानुकूल भाषा शिक्षा के लिए- जो बालक क, ख, ग, घ और मात्राएँ नहीं जानता वह शब्दों को नहीं लिख सकता और जो शब्द और उनके अर्थ को नहीं समझता वह भाषा की शिक्षा और ज्ञान को ग्रहण नहीं कर सकता । बालकों की आयु का यदि विशेष रूप से ध्यान रखा जाये तो सभी आयु के बालकों की ग्रहण शक्ति समान नहीं

होती । छोटी आयु के बालक कठिन बातों को प्राय: नहीं समझ पाते । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि बालकों को उनकी आयु और शैक्षिक स्तर के अनुसार ही आगे की शिक्षा दी जाये । अत: यह आवश्यक है कि किस स्तर पर बालक कितना ग्रहण कर लेते हैं । इसको ध्यान में रखते हुए प्रत्येक स्तर पर पढ़ाने के लिए अलग-अलग पाठ्य-पुस्तक हों ।

यह तो हुआ कि शिक्षकों की दृष्टि से पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता । इसी प्रकार बालकों की दृष्टि से भी पुस्तकें परमावश्यक हैं । बालकों की दृष्टि से पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता निम्न कारणों से है-

4. भाषा के अर्जित ज्ञान के स्थायित्व के लिए- अमीर खुसरो की एक बड़ी मनोरंजक पहेली है- घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों, रोटी जली क्यों, और विद्या भूली क्यों ? सभी बातों का एक ही उत्तर है- फेरा न था । स्पष्ट है कि शिक्षक की बताई हुई बातों को बालक चिरकाल तक स्मरण नहीं रख पाते । अत: सीखी हुई बातों को एक लम्बी अवधि तक स्मरण रखने के लिए उन्हें बार-बार दुहराना पड़ता है । परन्तु दुहराना उस समय तक सम्भव नहीं जब तक कि पाठ्य पुस्तकें न हों । अत: शिक्षक पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से बालकों को जो कुछ भी बताता है वे उन्हीं बातों को पाठ्य-पुस्तकों से पढ़कर अपने ज्ञान को स्थायी बना सकते हैं ।

5. स्वाध्याय के लिए- व्यक्तिगत भेदों के आधार पर यह स्पष्ट है कि कक्षा के सभी बालकों के ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता समान नहीं होती, न उनके समझने की गति ही एक समान होती है । अपनी-अपनी गति और अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार पढ़ने के लिए बालकों को पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है । वे बहुत सी बातें शिक्षक की सहायता के बिना भी, स्वयं पढ़कर सीख सकते हैं ।

6. प्रदत्त शिक्षा में समता लाने के लिए- शिक्षा के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं । इन उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई यह जानने के लिए मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है । परन्तु विभिन्न स्थानों पर मूल्यांकन का कार्य एक निश्चित पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकों के अभाव में बड़ा जटिल बन जाता है । उदाहरण के लिए जितनी भी केन्द्रीय या राजकीय पाठशालाएँ चल रही हैं उनमें यदि पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकों की समानता न हो तो सभी स्थानों पर शिक्षा की गति, शिक्षा का रूप सम नहीं हो सकता । इसलिए देश में या राज में, दूर-दूर स्थानों पर शिक्षा का स्वरूप समान रखने के लिए भी पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है ।

संक्षेपत: ज्ञानार्जन ज्ञान के प्रयोग और स्थायित्व तथा पथ प्रदर्शन के लिए पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता होती है ।

Scanned by CamScanner

पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा

वर्तमान में विभिन्न स्तरों पर अध्ययन के लिये जो पाठ्य पुस्तकें निर्धारित की हुई उनमें अनेक प्रकार के दोष और त्रुटियां हैं जिनको अनदेखा नहीं किया जा सकता अपितु उन पाठ्य पुस्तकों में सुधार लाने की आवश्यकता है । पाठ्य पुस्तकों में सुधार तभी सम्भव हो सकता है जब इनकी सूक्ष्म दृष्टि से समीक्षा की जाये ।

पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा करते हुए पाठ्य-विषय की दृष्टि से यदि देखा जाये तो विषय सामग्री छात्र-छात्राओं के स्तरानुकूल नहीं होती । दूसरे अगर हम समवाय की दृष्टि से भी देखें तो जिन तथ्यों को छात्र-छात्राएं इतिहास, भूगोल आदि अन्य विषयों में पढ़ते हैं,

Scanned by CamScanner

यदि उन्हीं तथ्यों पर आधारित लेख, कविताएं, कहानियां आदि पढ़ाई जायें तो छात्र-छात्राएं सरलता से समझ लेंगे । परन्तु पाठ्य पुस्तकों में विषय सामग्री का चयन इस प्रकार नहीं किया गया है ।

पाठ्य पुस्तक में कविताओं का चयन परम्परागत ढंग से चला आ रहा है जो आज की परिस्थितियों और बदलते युग के लिये बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है । एक समय था जब नारी को दया या हीन दृष्टि से देखा जाता था और उसको अबला और निःसहाय समझा जाता था लेकिन आज परिस्थितियां बदल गई हैं और उसको मातृशक्ति के रुप में राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति के रुप में पहचाना जा रहा है । अब नारी को दया दृष्टि की आवश्यकता नहीं बल्कि उसको सहयोग की आवश्यकता है जो एक नागरिक को दूसरे नागरिक से अपेक्षित है । नारी जो राष्ट्र की ही जननी नहीं बल्कि समस्त संसार की जननी है उसे हेय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिये ।

वर्तमान में किसी भी स्तर पर कविता के रुप में निम्न पंक्तियों को पढ़ाने का किसी भी प्रकार से कोई औचित्य नहीं है ।

अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी ।
आंचल में है दूध, आंखों में पानी ।।
नारी की झांई परत, अन्धा होत भुजंग।
कबीरा तिन की कौन गति, नित नारी के संग ।।
ढोल गवांर शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी ।

स्तर की दृष्टि से कबीर के जो दोहे महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किये जाने चाहियें उनको विद्यालय स्तर पर सम्मिलित कर लिया जाता है और विद्यालय स्तर के छात्र-छात्राएं उनके भावार्थ समझने में असमर्थ रहते हैं जैसे-

जल में कुंभ, कुंभ में जल, बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल, जल ही समाना, यह तथ्य कथित ज्ञानी ।।
लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ।।

ऊपरलिखित पंक्तियां गहन विचारों और भावों से युक्त हैं, जिनका सम्बन्ध रहस्यवाद से है । विद्यालय स्तर के छात्र-छात्राओं के लिये इनके अन्तर्निहित विचारों और भावों का समझना बहुत कठिन होता है ।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी गद्य और पद्य, कहानी, एकांकी और निबन्ध का चयन भी छात्र-छात्राओं के स्तरानुकूल नहीं होता । कुछ पाठ बहुत सरल होते हैं तो कई

पाठ बहुत कठिन होते हैं जिनके समझने में बालकों को बहुत कठिनाई होती है । पाठ्य पुस्तकों में व्याकरण और लिपि सम्बन्धी भी अनेक दोष होते हैं जिनका पढ़ने वालों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है । कुछ पाठ्य-पुस्तकों में तो ऐसे पाठों का संकलन होता है जिनका ज्ञान, मनोवृत्ति और शिक्षा के उद्देश्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होता । ऐसे पाठों से छात्र-छात्राएं ऊबने लगते हैं और पढ़ने में रुचि नहीं लेते । बाहरी आकर्षण की दृष्टि से भी देखा जाये तो पाठ्य पुस्तकों में कोई विशेष आकर्षण नहीं होता क्योंकि उनका आवरण, जिल्द और छपाई अच्छी किस्म की नहीं होती ।

इन पाठ्य पुस्तकों में जो दोष दिखाई देते हैं उनके कारण हैं-

सबसे बड़ा कारण तो यह है कि पुस्तक के लेखक या संकलनकर्त्ता में व्यावहारिक ज्ञान की कमी होती है क्योंकि वास्तविक रुप से उनका उस क्षेत्र से प्रत्यक्ष रुप से कोई सम्बन्ध नहीं होता जिनके लिये पुस्तकों का निर्माण किया जाता है ।

दूसरे प्रकाशकों की यह नीयत रहती है कि कम से कम खर्च करके अधिक से अधिक कमाई की जाये । इसलिये वे त्रुटियों की तरफ विशेष ध्यान नहीं देते ।

हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पाठ्य पुस्तकों में अनेक कमियां हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि इन कमियों को कैसे दूर किया जाये ? पाठ्य पुस्तकों की इन कमियों (दोषों) को दूर करने के लिये सैकण्डरी ऐजूकेशन कमीशन (माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53) जिसे मुदालियर कमीशन भी कहते हैं, ने जो सुझाव दिये हैं वे निम्न हैं-

1. पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन बाहरी प्रकाशनों द्वारा न कराके राज्यों की देख रेख में कराया जाये ।
2. प्रत्येक विषय तथा श्रेणी के लिये पर्याप्त पुस्तकें अनुमोदित की जायें और संस्थाएं उपयुक्त पुस्तकों का चयन स्वयं करें ।
3. पाठ्य पुस्तकों द्वारा किसी विशेष धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक भावना एवं सिद्धान्त का प्रचार न किया जाये ।
4. पाठ्य पुस्तकें बालकों में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना जागृत करें ।
5. पुस्तकों में प्रयुक्त चित्रों और पुस्तकों के आकार आदि का एक निर्दिष्ट और स्पष्ट मापदण्ड हो तथा केन्द्रीय और राज्य स्तर पर पुस्तकों में चित्र बनाने के लिये कलाकारों को प्रशिक्षण दिया जाये और चित्र संग्रहालय खोले जायें ।
6. प्रत्येक राज्य में एक उच्च समिति का गठन किया जाये जिसमें एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश, लोक सेवा आयोग का एक सदस्य, किसी एक

Scanned by CamScanner

16

हिन्दी शिक्षक के गुण
(Qualities of Hindi Teacher)

शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है । यह सत्य है कि विद्यालय भवन, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएं, निर्देशन कार्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें आदि सभी वस्तुएँ शैक्षिक कार्यक्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं पर जब तक उनमें अच्छे शिक्षकों द्वारा जीवन शक्ति प्रदान नहीं की जायेगी, तब तक वे निरर्थक रहेंगी । शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से आने वाली सन्ततियों पर अपना प्रभाव डालती है । शिक्षक ही राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमाओं को लांघकर विश्व व्यवस्था तथा मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है । अत: यह कहा जा सकता है कि मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर ही निर्भर है । इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से होती है :-

हुमायूं कबीर का कथन है- "वे (शिक्षक) राष्ट्र के भाग्य निर्णायक हैं । यह कथन प्रत्यक्ष रूप से सत्य प्रतीत होता है परन्तु अब इस बात पर अधिक बल देने की आवश्यकता है कि शिक्षक ही शिक्षा के पुनर्निमाण की महत्त्वपूर्ण कुन्जी है । वह शिक्षा वर्ग की योग्यता ही है जो कि निर्णायक है ।"

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है- "अपेक्षित शिक्षा के पुनर्निमाण में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व शिक्षक, उसके व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षणिक योग्यताएं, उसका व्यावसायिक प्रशिक्षण और उसकी स्थिति जो वह विद्यालय तथा समाज के जीवन पर उसका प्रभाव नि:सन्देह रूप से उन शिक्षकों पर निर्भर है जो कि उस विद्यालय में कार्य कर रहे हैं ।"

हुमायूं कबीर का मत है कि "शिक्षा पद्धति की कुशलता शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर है । अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा पद्धति का भी असफल होना अवश्यम्भावी है । अच्छे शिक्षकों द्वारा शिक्षा पद्धति के दोषों को भी अधिकांशत दूर किया जा सकता है ।"

इस प्रकार शिक्षा का महत्त्व समाज तथा शिक्षा पद्धति दोनों में ही स्पष्ट है । वस्तुत: शिक्षक न भावी नागरिकों का निर्माण करता है जिनके ऊपर राष्ट्र के उत्थान एवं पतन का भार है ।

शिक्षक को मनुष्यों का निर्माता, राष्ट्र निर्माता, शिक्षा पद्धति की आधारशिला, समाज को गति प्रदान करने वाला सब कुछ माना गया है । साधारणत: ऐसे शिक्षक में बालकों को समझने की शक्ति, उनके साथ उचित रुप से कार्य करने की क्षमता, शिक्षण योग्यता, काम करने की इच्छा शक्ति और सहकारिता आदि गुणों की आशा की जाती है । ऐसे गुण सामान्यत: न तो प्रत्येक शिक्षक में मिलते हैं और न शिक्षण प्रत्येक व्यक्ति का कार्य ही है । वस्तुत: यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जिसमें कुछ विशिष्ट शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक गुण हो । शिक्षण एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें मस्तिष्क का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है । इस सम्बन्ध की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता बहुत कुछ शिक्षक के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है । इस सम्बन्ध में समय समय पर अध्ययन किये गये हैं । संयुक्त राष्ट्र अमरीका में डा. एफ. एल. क्रौप ने 1913 में एक अध्ययन किया जिसके आधार पर उन्होंने अच्छे शिक्षक के व्यक्तित्व के निम्नलिखित दस गुणों का उल्लेख किया है :

(1) सम्बोधन (2) वैयक्तिक आकृति (3) आशावादिता (4) संयम (5) उत्साह (6) मानसिक निष्पक्षता (7) शुभ चिन्तन (8) सहानुभूति (9) जीवन शक्ति (10) विद्वता ।

रेमाण्ट (Raymount) का मत है कि शिक्षक को उन सभी बातों का त्याग करना चाहिये जो तुच्छ एवं हीन हों क्योंकि उसी पर समस्त छात्रों की दृष्टि लगी रहती है । शिक्षक स्वयं को अपने छात्रों पर अपना प्रभाव डालने से नहीं बचा सकता है । इसलिये यह आवश्यक है कि वह सदैव उच्च आदर्शों एवं विचारों की मन, वचन तथा कर्म से व्यवहार में लाये जिनका बालकों पर सर्वोत्तम प्रभाव पड़े । राष्ट्र पिता गांधी जी ने खेद के साथ कहा था कि शिक्षकों के आदर्श एवं व्यवहार में प्राय: सामंजस्य नहीं हो पाता: वे कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं ।

ऊपरलिखित विवेचन से पता चलता है कि किसी भी योग्य शिक्षक के लिये शैक्षिक योग्यता के अतिरिक्त कुछ अन्य गुणों की आवश्यकता होती है । ठीक इसी प्रकार प्रत्येक शिक्षक में भी वांछित गुणों का होना आवश्यक है । उदाहरण के लिये, यदि शिक्षक का व्यवहार अपने छात्रों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं है तो वह छात्रों का विश्वास, उनकी अपने प्रति श्रद्धा प्राप्त नहीं कर सकता । यह एक ऐसा गुण है जो सभी शिक्षकों में होना चाहिये चाहे वह इतिहास, भूगोल पढ़ाता हो, या कोई भाषा । इस प्रकार के गुणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी गुण होते हैं जो अन्य शिक्षकों की अपेक्षा भाषा शिक्षक में विशेष रूप से होने चाहियें । उच्चारण की शुद्धता एक ऐसा ही गुण है । वे गुण जो सभी शिक्षकों में समान रुप से होने चाहियें, शिक्षक के सामान्य गुण हैं और जो गुण अन्य विषयों के शिक्षकों में हों किन्तु भाषा शिक्षक में अवश्य ही हों । ऐसे गुणों को भाषा शिक्षक के विशेष गुण मानने

Scanned by CamScanner

चाहियें । ऊपर दिये गये उदाहरणों में सद्व्यवहार भाषा शिक्षक का सामान्य गुण है जबकि उच्चारण की शुद्धता उसका विशेष गुण हैं ।

हम भाषा शिक्षक के जिन गुणों का उल्लेख करने जा रहे हैं उनमें कुशल अभिव्यक्ति भाषा शिक्षक का विशेष गुण है, अन्य सभी सामान्य । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि भाषा शिक्षक को छोड़कर अन्य शिक्षकों में अभिव्यक्ति की कुशलता है ही नहीं । अन्य शिक्षकों में यह कम या अधिक हो सकती है । किन्तु भाषा शिक्षक में तो होनी ही चाहिये । मातृभाषा हिन्दी शिक्षक में सामान्य या विशेष रूप से निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है -

1. विस्तृत ज्ञान- विस्तृत ज्ञान से यहां यह नहीं समझना चाहिये कि प्रत्येक भाषा शिक्षक के पास हिन्दी भाषा की स्नातकोत्तर उपाधि हो । यह न तो सम्भव है और न ही न्यायोचित ही । शिक्षक के विस्तृत ज्ञान से यह तात्पर्य है कि शिक्षक को जिस कक्षा को पढ़ाना है, उसे पढ़ाने के लिये यथा सम्भव योग्यता होनी चाहिये । विस्तृत ज्ञान के लिये मातृभाषा के अध्ययन एवं अध्यापन में शिक्षक की विशेष रुचि और लगन होनी चाहिये और उसे भाषा के तत्त्वों का ज्ञान हो ।

(I) मातृभाषा के प्रति रुचि- मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि छात्र या व्यक्ति की जिस वस्तु या बात में विशेष रुचि होती है, उसे वह पूर्ण रूप से जानने का प्रयत्न करता है । भाषा के विस्तृत ज्ञान के लिये भी यह नियम समान रुप से लागू होता है । मातृभाषा शिक्षक में मातृभाषा के प्रति रुचि होनी चाहिये ।

(II) लगन - किसी व्यक्ति या किसी बालक में कार्य के प्रति रुचि तो हो लेकिन कार्य करने की पूरी तरह से लगन न हो तो वो कार्य सम्पन्न नहीं होता । इसलिये भाषा के विस्तृत ज्ञान के लिये भी रुचि और लगन दोनों का होना आवश्यक है । कुछ नया पढ़ने, लिखने और सृजन करने के लिये लगन का होना आवश्यक है ।

(III) भाषा के तत्त्वों का ज्ञान- भाषा के विस्तृत ज्ञान के लिये यह भी आवश्यक है कि शिक्षक को भाषा सम्बन्धी सभी तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान हो । उदाहरण के लिये, व्याकरण के नियमों को जाने बिना भाषा की शुद्धता सम्भव नहीं । इसलिये भाषा विज्ञान की जानकारी आवश्यक है ।

2. कुशल अभिव्यक्ति : छात्र-छात्राओं में अर्थ-ग्रहण की क्षमता का विकास करना बहुत कुछ अंशों में शिक्षक की कुशल अभिव्यक्ति पर आधारित है । मौखिक अभिव्यक्ति के लिये शब्द-ज्ञान, सरल और सुस्पष्ट भाषा एवं शुद्ध उच्चारण आवश्यक है ।

(I) शब्द-ज्ञान- बिना शब्द-ज्ञान के यह सम्भव नहीं कि सभी शब्दों का उचित प्रयोग किया जा सके । हिन्दी में तीन प्रकार के शब्द छात्र-छात्राओं को भ्रम में डाल देते हैं।

प्रथम तो वे शब्द जिनमें शब्दों में समानता होती है लेकिन अर्थ भिन्न जैसे

सकल = समस्त, सारे । हँस = हँसना

शक्ल = सूरत हंस = एक पक्षी

दूसरी प्रकार के वे शब्द जिनमें केवल मात्रा परिवर्तन से अर्थ में बड़ा अन्तर पड़ सकता है ।

जैसे- अलि = भौंरा अली = सखी

अनल = आग अनिल = हवा

तीसरे प्रकार के वे शब्द जिनका शाब्दिक अर्थ तो समान सा प्रतीत होता है लेकिन उनका प्रयोग भिन्न परिस्थितियों में किया जाता है ।

जैसे - पवन = हवा

समीर = समुद्र के किनारे चलने वाली हवा

अमूल्य = जिसका मूल्य आंका न जा सके

बहुमूल्य = बहुत कीमती

छात्र-छात्राओं पर शिक्षक की बात का अमिट प्रभाव पड़ता है, इसलिये यदि शिक्षक को यह अन्तर स्पष्ट नहीं होगा तो वह छात्र-छात्राओं को कैसे समझा सकेगा । यह बात विचारणीय है । अतः शिक्षक को शब्दों में परस्पर जो भेद हैं उनका ज्ञान पूर्ण रुप से होना चाहिये ।

(II) सरल और सुस्पष्ट भाषा- अगर शिक्षक की भाषा सरल और सुस्पष्ट होगी तो छात्र सुनने मात्र से अर्थ ग्रहण कर लेंगे ।

(III) उच्चारण की शुद्धता- मौखिक अभिव्यक्ति के लिये उच्चारण की शुद्धता का होना बहुत अनिवार्य है । मौखिक अभिव्यक्ति का प्रमुख गुण उच्चारण ही है । शिक्षक शब्दों का जैसा उच्चारण करेगा, छात्र भी वैसा उच्चारण करेंगे । यदि शिक्षक का उच्चारण ही अशुद्ध होगा तो छात्र कभी भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकेंगे । उच्चारण की शुद्धता शुद्ध लेखन का आवश्यक अंग है । प्रायः ऐसा देखने में आया है कि जो लोग अशुद्ध उच्चारण करते हैं, वे अशुद्ध लिखते भी हैं । इसीलिये अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के छात्र लिपि से सम्बन्धित अनेक भूलें करते हैं । इसलिये भाषा के शिक्षक को शुद्ध उच्चारण पर विशेष रूप से बल देना चाहिये ।

वैसे भी साहित्य सृजन के लिये भाषा का शुद्ध होना अत्यन्त अनिवार्य है ।

3. सद्व्यवहार :- भाषा शिक्षक में अन्य शिक्षकों की अपेक्षा अधिक व्यवहार कुशलता का होना आवश्यक है । इसके निम्न कारण हैं ।

Scanned by CamScanner

(I) छात्र-छात्राओं को चरित्र-निर्माण की शिक्षा भाषा के द्वारा ही दी जाती है । नैतिकता से सम्बन्धित व्यावहारिक बातों का ज्ञान भी भाषा के माध्यम से ही दिया जाता है।

(II) छात्र-छात्राएं बहुत सी बातें जीवन में अनुकरण से ही सीखते हैं । दूसरों के साथ दैनिक जीवन में कैसा व्यवहार किया जाये इसकी शिक्षा छात्र-छात्राओं को अप्रत्यक्ष रुप से अपने शिक्षक से ही मिलती है ।

(III) शिक्षक का सद्व्यवहार छात्र-छात्राओं में नैतिक गुणों का विकास करता है जो उनके चरित्र निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं ।

छात्र-छात्राओं के प्रति शिक्षक के सद्व्यवहार में कम से कम निम्न दो गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है-

(क) सहानुभूति- शिक्षक अपने इस गुण के कारण छात्र-छात्राओं में अपने प्रति श्रद्धा के भाव जागृत कर सकता है । यदि शिक्षक का व्यवहार विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं है तो उनमें कुछ ऐसे भाव जागृत हो जाते, जो उनकी अवनति में सहायक होते हैं । शिक्षक का रुखा या निर्दयतापूर्ण व्यवहार उसके प्रति विद्यार्थियों में घृणा उत्पन्न करता है और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, श्रद्धा । श्रद्धा सीखने में सहायक होती है और घृणा बाधक । अतः शिक्षक का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार विद्यार्थियों को प्रगति के रास्ते पर अग्रसर करता है । जेम्स एस. रास ने कहा है- "एक व्यक्ति जिसे सहानुभूति का उपहार नहीं मिला है- उसे शिक्षक नहीं बनना चाहिये ।" "According to James S. Ross "A person from whom the gift of sympathy is with held, should not become a teacher."

(ख) सहयोग- जीवन में कोई भी कार्य जब आपसी सहयोग से होता है तो वो कार्य अधिक सुव्यवस्थित ढंग से और कम समय में सम्पन्न हो जाता है । शिक्षण कार्य विद्यार्थियों के सहयोग से सफल एवं सुचारु रुप से हो जाता है । शिक्षण क्षेत्र में सहयोग से अभिप्राय है कि छात्र-छात्राओं की व्यक्तिगत कठिनाइयों को ध्यान में रखकर शिक्षण अध्यापन कार्य करे । छात्र-छात्रों की कठिनाइयों को ध्यान से सुनें और उन्हें दूर करने के लिये यथा सम्भव प्रयास करें ।

4. अन्य विषयों की जानकारी : हिन्दी शिक्षक अन्य विषयों की पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता और न ही उससे ऐसी अपेक्षा रखनी चाहिये । हां अन्य विषयों के बारे में प्रारम्भिक जानकारी अवश्य होनी चाहिये, क्योंकि भाषा का शिक्षण करते समय कुछ ऐसे प्रसंग आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध अन्य विषयों के साथ होता है। इसलिये हिन्दी शिक्षक को अन्य विषयों के ज्ञान से अनभिज्ञ नहीं होना चाहिये बल्कि उन विषयों का थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिये ।

Scanned by CamScanner

20

हिन्दी में मूल्यांकन एवं गृहकार्य
(Evaluation in Hindi and Homework)

इस धरा पर मनुष्य क्रियाशील प्राणी है और वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। उसका कोई भी कार्य निरर्थक नहीं होता अर्थात् वह जो भी कार्य करता है उसका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस संसार में जितने भी कार्य होते हैं, उनके पीछे कोई न कोई उद्देश्य किसी न किसी रूप में अवश्य ही निहित होता है। दूर ना जाकर शिक्षा के कार्य क्षेत्र में ही लीजिए शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षा केवल शिक्षा देने के लिये नहीं देते बल्कि इस शिक्षण प्रक्रिया के पीछे यह उद्देश्य निहित होता है कि छात्र-छात्राओं के व्यवहार में परिवर्तन आये और वे अपने जीवन को सुखमय बनाने के साथ-साथ अपने समाज और राष्ट्र का विकास कर सकें। उद्देश्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में निर्धारित तो अवश्य किये जाते हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति प्रत्येक क्षेत्र मे हो । कभी तो उद्देश्य की प्राप्ति हो भी जाती है और कभी नहीं होती और कभी उद्देश्य की प्राप्ति पूरी तरह से न होकर आंशिक रूप से होती है। जिस साधन से हम यह जान पाते हैं कि निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो गई है उसे मूल्यांकन कहते हैं।

मूल्यांकन की परिभाषा

'मूल्यांकन' का सीधा-सादा अर्थ है किसी का मूल्य लगाना। शिक्षण में मूल्यांकन द्वारा इस बात का अंकन किया जाता है कि छात्र-छात्राओं ने विभिन्न विषयों के किस स्तर तक ज्ञान प्राप्त किया है। शिक्षा के जिन उद्देश्यों को निर्धारित किया गया था उन उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हुई और शिक्षक अपने शिक्षण कार्य में कहां तक सफल हुआ। मूल्यांकन के लिये परीक्षायें आयोजित की जाती हैं। छात्र-छात्राएं परीक्षा की तैयारी करते हैं। निश्चित समय पर परीक्षाएं देते हैं। परीक्षा भवन में छात्र-छात्राओं को प्रश्न पत्र बांटे जाते हैं और उनकी उत्तर-कापियों को जांच कर उनका मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के अर्थ की स्पष्टता हेतु शिक्षाविदों ने भिन्न भिन्न परिभाषाएं दी हैं जो विचारणीय हैं-

1. कलार एवं स्टार के अनुसार, "मूल्यांकन वह निर्णय एवं विश्लेषण है जो विद्यार्थी के कार्य से प्राप्त सूचनाओं से निकाला जाता है।"

Scanned by CamScanner

2. सी. सी. रास के शब्दों में, "मूल्यांकन जो मापन से अलग है, का प्रयोग अकसर बालक के समूचे व्यक्तित्व अथवा शिक्षा की समूची स्थितियों की जांच प्रक्रिया के लिये किया जाता है।"

3. डा. हिल के विचारों में, "पुरानी प्रणाली समूचे पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-विधि को निर्देशित किया करती थी जब कि नई प्रणाली में परीक्षण एवं शिक्षण दोनों विशिष्ट शिक्षण-उद्देश्यों द्वारा निर्धारित किये जायेंगे। अतः इन्हीं पर समूची शिक्षा एवं मूल्यांकन निर्धारित होने चाहियें।"

4. जे. डब्लयू राईटस्टोन के विचारानुसार, "मूल्यांकन में व्यापक व्यक्तित्व से सम्बन्धित परिवर्तनों तथा शिक्षा कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। इसमें केवल विषय वस्तु का मूल्यांकन ही सम्बन्धित नहीं बल्कि दृष्टिकोणों, रूचियों, आदर्शों, चिन्तन-विधियों, काम की आदतों तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन योग्यताओं का मूल्यांकन भी सम्मिलित है।"

ऊपर दी गई परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मूल्यांकन एक ऐसी विधा है जो छात्र-छात्राओं की उपलब्धियों शिक्षण-विधियों तथा शिक्षण उद्देश्यों की जांच करती है। इन कार्यों में इसकी विशिष्ट एवं व्यापक उपयोगिताओं की ओर भी संकेत किया है। ये उपयोगितायें परीक्षण एवं मूल्यांकन को शिक्षा-पद्धति का अनिवार्य अंग बना देती है।

मापन और मूल्यांकन में अन्तर

देखने में ऐसा आया है कि कुछ शिक्षक भ्रमवश या जाने अनजाने में मापन और मूल्यांकन को एक दूसरे का पर्यायवाची मान लेते हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। अर्थ शास्त्र के दृष्टिकोण से अगर देखें तो जो अन्तर मूल्य और कीमत में है, ठीक उसी प्रकार का अन्तर मापन और मूल्यांकन में है। जब किसी वस्तु को पैसे देकर खरीदा जाता है और हम जितने पैसे देते हैं वह उस वस्तु की कीमत होती है परन्तु उस वस्तु को दूसरी वस्तु देकर लिया जाये तो यह उस वस्तु का मूल्य होता है। मुख्य अन्तर यह हुआ कि कीमत निश्चित होती है मूल्य निश्चित नहीं होता। इस प्रकार मापन का अर्थ किसी वस्तु या व्यक्ति के गुणों का मापना है जबकि मूल्यांकन का अर्थ है उसका मूल्य निर्धारित करना। मापन का सम्बन्ध यान्त्रिक क्रिया है जिसमें व्यक्ति की अपनी अच्छी या बुरी राय का कोई महत्त्व नहीं होता। परन्तु किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्यांकन उसमें निहित सभी गुणों एवं राय के आधार पर किया जाता है।

संक्षिप्त में मापन और मूल्यांकन में निम्न अन्तर हैं।

1. मापन संकुचित है और मूल्यांकन का केवल अंग मात्र है। मूल्यांकन का क्षेत्र बहुत विकसित होता है। मूल्यांकन के अन्तर्गत विद्यार्थी के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, भावात्मक आदि सभी गुणों को ध्यान में रखा जाता है।

2. हम मापन के आधार पर बालक के भविष्य के बारे में कुछ नहीं कह सकते लेकिन मूल्यांकन के आधार पर बालक के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है।

3. मापन करने में इतने समय की आवश्यकता नहीं होती जितने समय की मूल्यांकन के लिये आवश्यकता पड़ती है।

मूल्यांकन की शिक्षा में उपयोगिता

मूल्यांकन शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी है। इसकी उपयोगिता निम्न कारणों से है-

1. मूल्यांकन से ज्ञानोपार्जन होता है :– शिक्षा के अनेक उद्देश्य होते हैं। इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति तभी संभव हो सकती है जब शिक्षक का ज्ञान सभी क्षेत्रों के बारे में विस्तृत हो। यदि शिक्षक को उन सभी क्षेत्रों का ज्ञान नहीं है तो वह अवश्य ही वांछित ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करेगा। दूसरी तरफ छात्र-छात्राओं को यह ज्ञान होगा कि उनका मूल्यांकन केवल परीक्षा में प्राप्त किये हुए अंक तक सीमित नहीं है, बल्कि अन्य सभी गुणों के आधार पर भी होता है तो छात्र-छात्राएं वांछनीय गुणों को व्यावहारिक जीवन में अपनायेंगे।

2. मूल्यांकन से शिक्षण विधियों और पाठ्यक्रम में सुधार होता है :– मूल्यांकन के द्वारा यह भी ज्ञात हो सकता है कि शिक्षक जिन शिक्षण विधियों के माध्यम से शिक्षण कर रहा है वे शिक्षण परिस्थितियों में कितनी कारगर हैं और कितनी कारगर नहीं हैं। इससे शिक्षण विधियों के निर्बल और सबल बिन्दुओं का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार निर्बल बिन्दुओं को दूर करके शिक्षण विधियों को अधिक सार्थक और सशक्त बनाया जा सकता है।

3. मूल्यांकन सही मार्ग दर्शन करता है :– मूल्यांकन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा छात्र-छात्राओं की व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से कमियों की जानकारी प्राप्त हो सकती है और इस जानकारी के आधार पर उनका सही दिशा की ओर उचित मार्ग दर्शन किया जा सकता है।

4. मूल्यांकन छात्र-छात्राओं के वर्गीकरण में सहायक :– मनोविज्ञान के तथ्यों के आधार पर हम इस बात से भली भांति परिचित हैं कि सभी छात्र-छात्राओं में एक जैसी क्षमताएं और योग्यताएं नहीं होतीं वे एक दूसरे भिन्न होते हैं। किसी में कोई गुण अधिक और किसी में कम होता है। इस आधार पर छात्र-छात्राओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। एक वर्गीकरण तो यह हो सकता है कि जिनमें समान योग्यता के सभी छात्र एक कक्षा में रहें। इस प्रकार के वर्गीकरण को क्षैतिजीय वर्गीकरण (Horizontal

Scanned by CamScanner

Classification) कहते हैं। दूसरी प्रकार के वर्गीकरण में विभिन्न योग्याओं के मिले जुले छात्र एक कक्षा में रखे जायें। इस प्रकार के वर्गीकरण को लम्बीय वर्गीकरण (Vertical Classification) कहते हैं।

5. मूल्यांकन निदान और भविष्यवाणी में सहायक सिद्ध होता है :– मूल्यांकन की सबसे बड़ी एक उपयोगिता यह भी है कि छात्र-छात्राओं की कमियों को जानने के बाद उसके कारणों को जाना जा सकता है। कारण जानने के पश्चात उसके उपचार का प्रावधान किया जा सकता है और बहुत से छात्र-छात्राओं की भली भांति योग्यताओं की जांच पड़ताल करने के उपरान्त उनके बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है।

शिक्षा में मूल्यांकन का महत्त्व

दार्शनिकों, शिक्षाविदों और शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा की परिभाषाएं भिन्न-भिन्न दी हैं। इन परिभाषाओं के आधार पर शिक्षा के उद्देश्य भी अलग-अलग बताये गये हैं। किसी के अनुसार चरित्र का निर्माण करना ही शिक्षा है तो किसी के अनुसार व्यवसाय के लिये तैयार करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। आज शिक्षा के सर्वांगीण विकास को शिक्षा का अच्छा उद्देश्य माना जाने लगा है। परन्तु बालक का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब वह सीखे हुए ज्ञान को व्यवहार में लाये। वर्तमान में जो छात्र-छात्राओं के लिये परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं तो वे केवल छात्र-छात्राओं के अर्जित ज्ञान की जांच करती हैं न कि उस ज्ञान के सदुपयोग की। वर्तमान में जिन परीक्षाओं का चलन है वे केवल मूल्यांकन की अंग मात्र हैं।

यहां एक बात स्पष्ट करने की यह है कि शिक्षक यह समझता है कि उसने शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये थे, वह उन्हें प्राप्त कर रहा है। दूसरी तरफ छात्र-छात्राएं यह समझते हैं कि जो कुछ शिक्षक पढ़ा रहा है वे उसे ग्रहण कर रहे हैं और अभिभावक इस बात से सन्तुष्ट हैं कि उनके बच्चे विद्यालय में जाकर समय का सही ढंग से सदुपयोग कर रहे हैं और साथ ही साथ शिक्षा भी ग्रहण कर रहे हैं। लेकिन तीनों को अपने-अपने स्थान पर तब तक सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये जब तक वे मूल्यांकन रूपी कसौटी पर खरे न उतरे। इन्हीं सब बातों की जांच के लिये मूल्यांकन करना चाहिये। निम्न बातों को देखते हुए मूल्यांकन का बहुत महत्त्व है।

1. विद्यार्थियों की उपलब्धियों को जांचने में सहायक :– परीक्षा एवं मूल्यांकन से विद्यार्थियों की उपलब्धियां जांचने में सहायता मिलती है। हर साल वार्षिक परीक्षा आयोजित करने का मुख्य प्रयोजन यह होता है कि कौन सा विद्यार्थी किस स्तर के योग्य है– इसका निर्णय परीक्षण एवं मूल्यांकन से किया जाता है। उत्तीर्ण विद्यार्थियों में से कौन सा विद्यार्थी दूसरों से अधिक योग्य है– इसका निर्णय भी परीक्षण एवं मूल्यांकन से होता है।

2. विद्यार्थियों की कमजोरियों को जानने में सहायक :– विद्यार्थियों में विभिन्न प्रकार की कमजोरियां उनकी वास्तविक योग्यताओं के विकास में बाधक बनती रहती हैं। इन कमजोरियों के ज्ञान के बिना उन्हें विकास के मार्ग पर अग्रसर नहीं किया जा सकता। विद्यार्थियों की इन कमजोरियों का ज्ञान परीक्षण एवं मूल्यांकन से होता है।

3. विद्यार्थियों की प्रगति में सहायक :– परीक्षण एवं मूल्यांकन विद्यार्थियों की प्रगति में सहायक सिद्ध होता है। विद्यार्थियों को जब अपनी कमजोरियों का ज्ञान हो जाता है तो वे उनके प्रति सचेत होकर उन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं। अध्यापक को जब विद्यार्थियों की कमजोरियों का ज्ञान हो जाता है तो वह उनकी कमजोरियों को दूर करके उन्हें प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर करता है।

4. विद्यार्थियों की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने में सहायक :– शिक्षण को मनोवैज्ञानिक आधार देने के लिए विद्यार्थियों की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। वैयक्तिक विभिन्नता इस बात की मांग करता है कि सभी विद्यार्थियों को एक लकड़ी से न हाँका जाये। सभी विद्यार्थी एक ही स्तर के नहीं होते। कुछ मेधावी होते हैं, कुछ औसत होते हैं, तो कुछ कमजोर। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी योग्यताओं एवं आवश्यकताओं के अनुसार आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किये जायें। इसके लिए प्रत्येक विद्यार्थी की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु कौन सा विद्यार्थी किस स्तर का है, किसी विद्यार्थी में कौन सी योग्यतायें एवं कमजोरियां हैं ? जब तक इनका पता नहीं चलेगा तब तक व्यक्तिगत रूप से ध्यान लाभकारी सिद्ध नहीं हो सकता। यह जानकारी परीक्षण एवं मूल्यांकन द्वारा प्रदान की जाती है। इस प्रकार परीक्षण एवं मूल्यांकन अध्यापकों को विद्यार्थियों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देने के योग्य बनाता है।

5. विद्यार्थियों के लिए प्रेरक :– परीक्षा एवं मूल्यांकन विद्यार्थियों के लिए प्रेरक भी सिद्ध होती है। परन्तु जैसे ही परीक्षा निकट आती वे पढ़ने में रूचि लेने लगते हैं। परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी सख्त परिश्रम भी करने लगते हैं। इस प्रकार परीक्षा एवं मूल्यांकन विद्यार्थियों में पढ़ने की रूचि उत्पन्न करता है और उन्हें सख्त परिश्रम के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

6. विद्यार्थियों को योग्यतानुसार विषय चुनने में सहायक :– आजकल कोर्सों के विभिन्नीकरण पर बल दिया जा रहा है। विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं एवं रूचियों के अनुसार विषय चुनने चाहिएं। इसी के आधार पर ही यह निश्चय किया जा सकता है कि वे जीवन में कौन सा व्यवसाय कुशलतापूर्वक कर सकते हैं, परन्तु प्रश्न उठता है कि विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं एवं रूचियों का ज्ञान कैसे हो ? इसके लिए परीक्षण एवं मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। मैट्रिक तक सभी विद्यार्थी सभी निर्धारित विषय पढ़ते

Scanned by CamScanner

19

हिन्दी - पुस्तकालय
(Hindi Library)

पुस्तकालय और शिक्षा का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसको शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना है। पुस्तकालय को स्कूल भवन का एक विशेष कक्ष न मानकर बल्कि कक्षा की शिक्षण प्रक्रिया का पूरक मानना चाहिये। पुस्तकालय को **शिक्षा** सेवा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। पुस्तकालय छात्र-छात्राओं के लिये ही नहीं होता बल्कि शिक्षकों के लिये भी उतना ही अनिवार्य है जितना विद्यार्थियों के लिये है। एक अच्छा पुस्तकालय स्कूल के लिये वास्तविक सेवा के रूप में कार्य करता है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि 'पुस्तकालय स्कूल का हृदय है' पुस्तकालय शिक्षा से सम्बन्धित वर्गों, छात्र-छात्राओं और शिक्षकों को पुस्तक तथा अन्य सामग्री प्रदान करता है। पुस्तकालय एक ऐसा स्थान है जो बालकों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षित करने में सहायता प्रदान करता है। जीवन में पुस्तकों को पढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि पढ़ के सीखना भी आवश्यक है। इसलिये यह कहना उचित होगा कि पुस्तकालय एक सीखने की प्रक्रिया है, जो सर्वश्रेष्ठ ढंग से बालक को शिक्षित करने में सहायक सिद्ध होती है। आज के युग में हिन्दी की शिक्षा के लिये भी पुस्तकालय को हिन्दी की सहायक सेवा के रूप में अपनाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि पुस्तकालय हिन्दी की शिक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण अंग है।

आज हिन्दी के शिक्षक भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि केवल हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी भाषा एवं साहित्य के सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं है। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये पुस्तकालय की आवश्यकता पड़ती है जहां हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिये अनेक पुस्तकें एवं पत्रिकाएं उपलब्ध होती हैं। पुस्तकालय हिन्दी पाठ्यक्रम सहगामी गतिविधियों को बढ़ावा देता है और स्वाध्याय एवं गहन अध्ययन के लिये उत्तम साधन है। कक्षा में तो छात्र-छात्राओं को अध्ययन करने योग्य बनाकर अध्ययन के लिये तैयार किया जाता है। विस्तृत अध्ययन का अवसर तो उन्हें कक्षा से बाहर ही मिलता है। हिन्दी शिक्षण की दृष्टि से पुस्तकालयों का सभी विषयों की शिक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्व है लेकिन भाषा और उसके साहित्य की दृष्टि से उसका महत्त्व और भी अधिक है।

पुस्तकालय का महत्त्व

1. स्वाध्याय के लिये अवसर प्रदान करना - पुस्तकालय में छात्र-छात्राओं को अपनी रूचि और योग्यता के अनुसार हिन्दी और उसके साहित्य की पुस्तकें पढ़ने के लिये

उपलब्ध होती हैं जिनका अध्ययन वे वाचनालय या पुस्तकालय में बैठकर कर सकते हैं। इस प्रकार उनको स्वाध्याय का अवसर मिलता है।

2. कक्षा-शिक्षण की पूर्ति – कक्षा में सभी कुछ पढ़ाना सम्भव नहीं होता क्योंकि जो निर्धारित पाठ्य क्रम होता है उसको पढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिये मुंशी प्रेम चन्द की कहानी 'पूस की रात' पाठ्य क्रम में है उसको शिक्षक पढ़ा देगा लेकिन मुन्शी प्रेम चन्द की अन्य कहानियों को पढ़ने के लिये पुस्तकालय का ही सहारा लेना पड़ेगा।

3. नवीन शिक्षण प्रणालियां – जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं पुस्तकालय का महत्त्व हिन्दी विषय के छात्र-छात्राओं के लिये ही नहीं बल्कि हिन्दी शिक्षकों के लिये भी है। नवीन शिक्षण प्रणालियों से अवगत होने के लिये शिक्षक का भी पुस्तकालय में बैठकर अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

4. सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में सहायक – पुस्तकालय में मातृ भाषा के साहित्य के जाति विशेष की सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें उपलब्ध होती हैं जिनके माध्यम से जाति विशेष का विकास, मूल्य, विश्वास, परम्परायें और आकांक्षाओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

5. अध्ययनशील आदतों का विकास होता है – पुस्तकालय छात्र-छात्राओं में अध्ययन की आदत का विकास करने में प्रमुख और सर्वश्रेष्ठ साधन है। कक्षा में छात्र-छात्राओं को मौन पाठ का इतना अवसर नहीं मिलता जितना पुस्कालय में मिलता है। मौन पाठ के माध्यम से अध्ययन और अनुशासन में रहने की आदत का विकास होता है।

6. छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व का विकास करता है– पुस्तकालय छात्र-छात्राओं के मानसिक और बौद्धिक विकास के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का विकास भी करता है। जो छात्र-छात्राएं पुस्तकालय में हिन्दी की साहित्यिक पुस्तकों का अध्ययन करना प्रारम्भ कर देते हैं तो उनके ज्ञान में निरन्तर वृद्धि होती रहती है तो वे इस ज्ञान के आधार पर तर्क पूर्ण ढंग से दूसरों से बातचीत कर सकते हैं और अपनी मनन और चिन्तन शक्ति के द्वारा समाज में दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित कर सकते हैं। वे अधिक से अधिक सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिये अपने को सक्षम समझते हैं। इससे उनका समाजीकरण होता है। इस लिये छात्र-छात्राओं को अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों का अध्ययन भी करना चाहिये जो स्कूल के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं।

7. स्वतन्त्र चिन्तन के लिये प्रेरित करता है – पुस्तकालय में बैठकर अध्ययन करने से छात्र-छात्राओं में स्वतन्त्र रूप से विचार करने की शक्ति का विकास होता है और साथ ही साथ वे शुद्ध और स्पष्ट भाषा में आत्माभिव्यक्ति भी स्वतन्त्र रूप से करने लग जाते हैं। वे स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने के बाद स्वतन्त्र रूप से हिन्दी पाठ्य पुस्तकों से सम्बन्धित अपने नोट्स तैयार करते हैं। इससे उनमें मौलिक चिन्तन का विकास होता है और उनके आत्मविश्वास में दृढ़ता आती है। वे अन्धानुकरण और रटने की प्रवृत्ति का त्याग कर देते हैं और क्रमबद्धता एवं तर्कपूर्ण ढंग से विचारों की अभिव्यक्ति करना सीख जाते हैं।

Scanned by CamScanner

श्री एम. सी. छागला भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री के अनुसार – "शिक्षा क्रम की संकीर्ण सीमाओं से बाहर यात्रा करने तथा स्वयं वस्तुओं की खोज करने के लिये शिक्षकों तथा विद्यार्थियों दोनों को एक निकटवर्ती पुस्तकालय से बहुत सहायता मिल सकती है।"

("A library close at hand is a great help both to the teachers and the boys to travel out side the tight corners of the curriculum to discover things for themselves.")

अगर हम छात्र-छात्राओं में स्वतन्त्र रूप से चिन्तन का विकास करना चाहते हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की आदत का विकास करना चाहते हैं तो स्कूल में पुस्तकालय की व्यवस्था होनी ही चाहिये।

8. समय के सदुपयोग का श्रेष्ठ साधन – आज का युग विज्ञान का युग है। वैज्ञानिकों ने अनेक अविष्कार करके हमारे जीवन को बहुत सहज बना दिया है। यही कारण है कि आज मनुष्य के पास पर्याप्त रूप से अवकाश है। प्रश्न यह उठता है कि वह ऐसे समय में इसके लिये पुस्तकालय ही ऐसा साधन है जहां छात्र-छात्राएं अध्ययन करके समय का सदुपयोग करते हुए अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं।

9. पाठ्य सहगामी गतिविधियों में सहायक – पाठ्य पुस्तकों में सहगामी गतिविधियों से सम्बन्धित विषय सामग्री पर्याप्त रूप में नहीं होती। इसके लिये पुस्तकालय का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है वाद-विवाद प्रतियोगिता, भाषण प्रतियोगिता, कविता-पाठ, नाटक मंचन आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेने हेतु विषय सामग्री पुस्तकालय में उपलब्ध होती है।

10. पुस्तकालय शिक्षक और विद्यार्थियों के लिये मनोरंजन का साधन भी है – पुस्तकालय में हर प्रकार की पुस्तकों की व्यवस्था होती है। पाठ्य पुस्तकों और अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त दैनिक समाचार पत्र, पाक्षिक पत्रिकाएं, और साप्ताहिक पत्रिकायें भी उपलब्ध होती हैं। जब शिक्षक और छात्र-छात्राएं दैनिक कक्षा कार्य से ऊबने लगते हैं तो वे अपनी खाली समय में पुस्तकालय में जाकर भाषा से सम्बन्धित हल्का-फुल्का साहित्य पढ़कर अपनी थकावट और नीरसता को दूर करने का प्रयास करते हैं।

हिन्दी पुस्तकालय के उद्देश्य

1. छात्र-छात्राओं में मौन पाठ और स्वाध्याय की आदत का निर्माण करना।
2. छात्रों को अपनी हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों, पत्रिकाओं आदि का उपयोग करने के लिये प्रेरित करना।
3. छात्र-छात्राओं की साहित्यिक रूचियों का विकास करना ।
4. उनमें जिज्ञासा प्रवृत्ति का विकास करना और साथ ही साथ व्यक्तिगत रूप से खोज करने के योग्य बनाना।
5. छात्र-छात्राओं में हिन्दी शब्द कोष संदर्भ पुस्तकों आदि का उचित प्रयोग करने की कुशलता का विकास करना तथा हिन्दी से सम्बन्धित ज्ञान में वृद्धि करना।

6. छात्र-छात्राओं में सहयोगी दृष्टिकोण का विकास करते हुए उनका अधिक से अधिक समाजीकरण करना।
7. हिन्दी शिक्षकों के ज्ञान में वृद्धि करना और उनको हिन्दी शिक्षण की नवीनतम शिक्षण विधियों की सूचना प्राप्ति का साधन प्रदान करना।

एक बात हम सभी को समझ लेनी चाहिये कि कुछ पुस्तकों को एकत्रित करके किसी कमरे में रख देने से उस कमरे को पुस्तकालय का नाम नहीं दिया जा सकता। छात्र-छात्राओं के हितों को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक गतिविधियों को रोचक बनाने के लिये पुस्तकालय की व्यवस्था करना बहुत आवश्यक है। प्रधानाध्यापक की इस सम्बन्ध में बहुत बड़ी भूमिका है। उसे इसकी उचित व्यवस्था हेतु पर्याप्त स्थान और साज-सज्जा, उचित वातावरण और योग्य एवं प्रशिक्षित पुस्तकालाध्यक्ष की नियुक्ति उपयोगी पुस्तकों और अन्य अध्ययन योग्य विषय सामग्री का संग्रह और उसका अधिक से अधिक प्रयोग करने के लिये छात्र-छात्राओं को प्रोत्साहित करने के लिये कार्य करना होगा।

पुस्तकों के चयन हेतु ध्यान देने योग्य बातें

पुस्तकों को चयन करने के लिये निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहियें:

1. पुस्तकों का बाहरी आकार सुन्दर और आकर्षक होना चाहिये । अगर बाहरी आकार सुन्दर होगा तो छात्र-छात्राएं पुस्तकों की ओर आकर्षित होंगे । पुस्तक का आवरण, कागज, मुख्य पृष्ठ, छपाई अच्छी और मजबूत होनी चाहिये । छोटे बालकों के लिये पुस्तकें सचित्र होनी चाहियें ।
2. पाठ्य पुस्तकें स्तरानुकूल भी होनी चाहियें । छोटे बालक जीव-जन्तुओं और परियों की कहानियों में रुचि लेते हैं । बड़े बालक खोज सम्बन्धी जिज्ञासापूर्ण घटनाओं के पढ़ने में रुचि लेते हैं । किशोरावस्था के छात्र वीरता एवं साहसी चरित्रों के विषय में पढ़ना चाहते हैं । इसलिये पाठ्य पुस्तकों का छात्र-छात्राओं के स्तरानुकूल होना बहुत आवश्यक है ।
3. पाठ्य पुस्तकों में विविधता होनी चाहिये- पाठ्य पुस्तकें, बाल साहित्य, उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक और नीति, संस्कृति और धर्म की पुस्तकें अवश्य होनी चाहियें जिससे हमारे छात्र-छात्राओं को अपनी सभ्यता और संस्कृति का सही ढंग से ज्ञान हो सके ।
4. पुस्तकालय के लिये मनोरंजन से भरपूर पुस्तकों का भी चयन किया जाना चाहिये।
5. हिन्दी के पुस्तकालय में सभी भाषाओं के शब्द कोषों का होना आवश्यक है ।
6. पुस्तकों के चयन के लिये पुस्तक के शैक्षिक मूल्य को भी ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है । पुस्तकें ऐसी हो जिससे छात्र-छात्राओं की भाषा में विकास हो और विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से उनके ज्ञान में बढ़ोतरी हो । इन पुस्तकों से उनको चरित्र निर्माण की शिक्षा भी मिले । इन पुस्तकों से अगर छात्र-छात्राओं का नैतिक एवं चारित्रिक विकास होता है तो इन पुस्तकों को अच्छा माना जायेगा।

Scanned by CamScanner

7. पुस्तकालय की पुस्तकों का चयन करते हुए यह बात भी ध्यान में रखनी आवश्यक है कि इन पुस्तकों से छात्र-छात्राओं का मानसिक एवं बौद्धिक विकास हो । इन पुस्तकों के अध्ययन करने से छात्रों की तर्क-वितर्क, चिन्तन और मनन शक्तियों का विकास हो ।
8. भाषा के मुख्य ग्रन्थ पुस्तकालय की शोभा ही नहीं बढ़ाते बल्कि पुस्तकालय की जान होते हैं । हिन्दी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के ग्रन्थों को भी पुस्तकालय में उचित स्थान मिलना चाहिये ।
9. पाठ्य पुस्तकों और अन्य शैक्षिक मूल्यों से सम्बन्धित पुस्तकों को पर्याप्त रुप से पुस्तकालय में रखना चाहिये जिससे अधिक से अधिक छात्र-छात्राएं लाभान्वित हो सकें ।
10. पाठ्य पुस्तकों और अन्य प्रकार की पुस्तकों के अतिरिक्त पुस्तकालय में हिन्दी भाषा से सम्बन्धित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को भी मंगाना चाहिये । इन पत्रिकाओं से छात्र-छात्राओं को आधुनिक प्रवृत्तियों का ज्ञान होगा और संसार की बदलती गतिविधियों से भी परिचित होंगे ।

निःसन्देह पुस्तकालय से अनेक लाभ हैं, इसलिये पुस्तकालय का विद्यालय में होना अत्यन्त आवश्यक है । लेकिन यह खेद की बात है कि हमारे देश के बहुत कम विद्यालयों में पुस्तकालयों की व्यवस्था है । जिन विद्यालयों में पुस्तकालय की व्यवस्था है तो उनमें पुस्तकालयों का सही ढंग से प्रयोग नहीं हो रहा है । इसके अनेक कारण हैं और इन कारणों के लिये किसी व्यक्ति विशेष या संस्था विशेष को दोषी नहीं ठहराया जा सकता बल्कि इसके लिये हम सभी और देश की विपरीत परिस्थितियां जिम्मेवार है । जैसे धनाभाव, अपर्याप्त पुस्तकें, शिक्षकों और अफसरों की उदासीनता, विस्तृत पाठ्यक्रम और प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष का न होना आदि । इन सभी कमियों के होते हुए भी अगर शिक्षक अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरुक हैं और छात्र-छात्राएं पूर्ण रूप से अध्ययन में रुचि लेते हैं तो जिन विद्यालयों में पुस्तकालय हैं उनका प्रयोग शिक्षकों और छात्र-छात्राओं को अवश्य ही करना चाहिये ।

Scanned by CamScanner